श्री ध्रुव चरित्र

सोहन लाल रामरंग

श्री ध्रुव चरित्र

(सुदामा-चरित्र के रचयिता १६ वीं शताब्दी के सुकवि श्री नरोत्तमं दास जी के ध्रुव-चरित्र सम्बन्धि प्राप्त मात्र कुछ छंदों पर आधारित ब्रजभाषा काव्य)

सोहन लाल रामरंग

प्रकाशक :
विद्या विहार
दक्खिनी राय स्ट्रीट, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२

धर्म के सहज स्वरूप

एवम्

विश्व की सात्त्विक शक्तियों के संगठन तथा सुरक्षण हेतु

जिनके प्रतिक्षण का निःश्वास-निःश्वास

प्रत्येक दृष्टि से प्रत्यक्षतः पूर्णतः समर्पित देखा

उन्हीं

भक्त हृदय - ध्रुव संकल्प चित्त - श्रद्धामूर्ति

श्रीमंत अशोक जी सिंघल

के कृतित्व को

साभिवंदन

समर्पित

रामरंग

गीता जयन्ती, २०५३ वि.

प्रार्थना

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो

भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।

येनांजसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं

नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ।।

श्रीमद्भागवत ११/६/४

अव्यभिचारी-भाव भरे अंतर के स्वामी।

दें सत्संग उन्हीं संतों के अंतर्यामी।।

जिनसों तव गुण - लीलामृत कौ सुरस पान करि।

तरहुँ बना उन्मत्त मत्त मनहू भवसागरि।।

देहुँ भक्ति निज, मुक्ति नहिं, यहि बिनती करुणाअयन ।

देश - धर्म हित पाय नित, रामरंग जीवन - मन ।।

भूमिका

यद्यपि कुछ बुद्धिजीवी यदा–कदा कहते रहते हैं कि साहित्यिक क्षेत्र में ब्रजभाषा 'मृतवत्' हो गई किन्तु चाह कर भी वे उसके लालित्य को नकार नहीं पाते। सत्य तो यह है कि विश्व साहित्य में हिन्दी को जो प्रतिष्ठा प्राप्त है उसका अधिकांश श्रेय ब्रजभाषा को ही जाता है। आप विचारें–तुलसी, सूर, मीरा, रहीम, रसखान, भूषण, केशव, बिहारी, भारतेन्दु, रत्नाकर आदि को यदि हम पृथक कर दें तो हिन्दी के पास कितना शेष बचेगां और क्या शेष बचेगा ? इनकी रचनायें तो हिन्दी साहित्य की मात्र मेरुदंड ही नही अपितु प्राणशक्ति हैं। ब्रजभाषा से चाहे देश के एक प्रदेश विशेष का बोध होता हो किन्तु वह अनेक शताब्दियों तक उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक भारतीय–मनीषा के हृदय की धड़कन रही है। गुजरात के नरसी मेहता, महाराष्ट्र के समर्थ स्वामी, असम के शंकर देव, बंगाल के चंडीदास – विद्यापति – महाप्रभु चैतन्य देव, पंजाब के सिख गुरुगण ही क्यों अपितु दक्षिण–भारत के अनेकानेक संत–भक्त कवियों की वाणी में ब्रजभाषा की स्पष्ट छाप अंकित हुई दिखती है।

सत्य तो यह है कि 'ब्रजभाषा मृत नहीं अपितु मृत संजीवनी है' यह सिद्ध करने के लिये अनेकानेक कवियों की मात्र एक–एक पंक्ति ही पर्याप्त दिखती है। यह भी ठीक है कि समय के साथ–साथ भाषा की शब्दावलि, उसके प्रयोगों में फेर–बदल भी हुआ है, होता है। आज की हिन्दी जो कभी खड़ी बोली के रूप में खड़ी हुई थी उसने कितने रूप बदले हैं और कितने बदलने जा रही है, यह उसकी समुन्नति का प्रमाण है न कि अवनति का परिणाम। यही ब्रजभाष के साथ हुआ।

सुकवि नरोत्तम दास के सुदामा चरित से तो हिन्दी का प्रत्येक प्रबुद्ध पाठक परिचित है किन्तु वे ध्रुव चरित्र की भी रचना करने जा रहे थे, यह जानकारी प्रायः प्रत्येक को नही है। उसके

कुछ छंद यत्र–तत्र देखने को मिले परन्तु शेष रचना का क्या हुआ, वह इतनी ही रही अथवा मूलप्रति किसी प्रकार नष्ट हो गई – इसके विषय में प्रामाणिकता से कुछ नही कहा जा सकता। हमारे अनेक लेखकों की रचनायें उनके निधन के कारण अपूर्ण रहीं जिनमें से कुछ को उनके उत्तराधिकारियों ने, शिष्यों ने, पाठको ने, पूर्ण किया। कुछ यथावत् प्रभावोत्पादक भी बनीं परन्तु अधिकांशतः उनके मूलतत्त्व के स्पर्श से अछूती सी ही रहीं क्योंकि रचना–कर्म के साथ रचयिता के भावों को वे हृदयंगम करने में समर्थ सिद्ध नही हुई जिनका उल्लेख करना मैं इस समय उचित नही मान रहा हूँ।

अस्तु, जहां तक श्री ध्रुव चरित्र का संबंध है मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि श्री रामरंग जी ने उसकी भाषा और छंद की दृष्टि से ही नही अपितु भावनात्मक रूप में भी उसी प्रकार पूर्ति की है जो हमें नरोत्तमदास के सुदामा चरित में दृष्टिगोचर होती है। भक्तिकाल की रचनाओं में हमारे भक्त कवियों ने जिस प्रकार भगवद्–तत्त्व के साथ एकाकार होकर विभिन्न रसों की सृष्टि की है वही स्वरूप श्री ध्रुव चरित्र में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। 'उत्तर साकेत' महाकाव्य के सामने यद्यपि यह रचना बहुत छोटी है। किन्तु भारतीय संस्कृति की धर्मनिष्ठ प्रभावोत्पादकता में उसमें कहीं न्यूनता नहीं है। ध्रुव चरित्र का श्री मद्भागवत् महापुराण में महर्षि वेदव्यास ने वर्णन किया है उसे श्री रामरंग ने अपने छंदों में बुनकर जिस भावमय कवि – कौशल का परिचय दिया है, वह उन्हीं के योग्य है। उनके विशाल अध्ययन – अनुशीलन का परिचायक है।

श्री रामरंग कृत ध्रुव–चरित्र उत्तरसाकेत कि भाँति ही कालान्तर में हिन्दी साहित्य की एक निधि सिद्ध होगी, मुझे विशवास है।

डा० रामशरण गौड़
सचिव
हिन्दी अकादमी, दिल्ली

आत्म निवेदन :-

'ध्रुव' यह नाम जिव्हा पर आते ही क्या अपितु इस शब्द की स्मृति-मात्र से ही यों तो किस भारतीय नर-नारी के नयनों में वह अलौकिक दृश्य नहीं तैरने लगता कि यमुना किनारे एक टीले पर एक पांच वर्ष का बालक एक चरण पर नयन मूँदे करबद्ध खड़ा है और उसके सम्मुख खड़े हैं अपने कमल-नयनों में वात्सल्यमयी अलौकिक मनुहार भरे, उसे एकटक निहारते हुए स्वयं परात्पर परब्रह्म जगनियंता वे कमलनयन नारायण जो जन्म-जन्मांतरों तक अत्यन्त कठोर तपस्या करने वाले योगियों के ध्यान में भी क्षण भर को नहीं आते किंतु फिर भी उस अबोध बालक साधक की साधना में जो सिद्ध-भक्ति का एक विशिष्ट-बोध है वह सामान्यतः प्रथम दृष्टि में सहजभाव से बोधगम्य नहीं होता। 'विमाता के वचनों से आहत होकर ध्रुव वन में तपस्या द्वारा भगवान से वर प्राप्त कर आकाश में आज भी ध्रुव तारे के रूप में दिखता है' यह कथा तो लोक प्रसिद्ध है परन्तु उसके अंतर में भक्ति का वह अंतर्द्वन्द, भक्तियों का वह पारस्परिक द्वन्द छिपा हुआ जो एक विशुद्ध भक्ति के स्वरूप का प्रतिपादक है। एक भक्त के लिये आदर्श मार्ग-दर्शक है।

सुदूर पश्चिमी-सागर के अंध-महाद्वीप (अफ्रीका) से मलय-जव-सुमित्रादि द्वीपमाला पर्यन्त पूर्वीय-सागर के मध्य, गिरिराज हिमालय की हिमाच्छादित-हरित-पल्लवित-पुष्पित अमित देव-दुर्लभ वनस्पति परिपूरित उपत्यकाओं से लेकर सिंधु-त्रिवेणी की त्रयरंगिणी लहरमाला से प्रक्षालित भगवती कन्याकुमारी की पादांगुलीया विभूषित पदावली तक विस्तृत यह भरत-भूमि यों तो विभिन्न कालों में अनकानेक परिस्थितियों के कारण हमारी ही मूर्खता और अधिकांशतः हमारों की ही क्षुद्र स्वार्थोत्पन्न आत्मघाती धूर्तता-क्रूरता-कायरता के कारण कट-कट कर बँट-बँट कर जितनी रह गई है, वह तो मान चित्रों में है परन्तु अभी भी जो कटने-बँटने को बैठी है वह काटने-बाँटने वालों के ध्यान में जितनी है उतनी में इतनी-कितनी भी उसके शासक कहलाने वालों के ध्यान में भी यद्यपि नहीं है तो भी उसकी एक

संस्कृति है क्योंकि उसकी सनातन परिपक्व संस्कारों से संस्कारित संस्कृत भाषा गुप्त होते-होते भी अब लुप्त नहीं हुई है। उसी संस्कृत भाषा की प्रदीपिका को प्रदीप्त करने के लिए अनेकानेक धातु कच्ची-धातु रूपी कपास के रूप में जिन शब्द-रूपी वर्तिकाओं का निर्माण कर अपनी प्रदीप्ति से भारतीय-भाषा जगत के दिग्दिगन्त को प्रकाशित कर रही हैं उन्हीं में एक 'भज्' धातु भी है जो भजना, सेवा करना आदि भावों की प्रतिपादिता है। यही 'भज्' धातु 'भक्ति' शब्द की जननी है। जननी के गर्भ से जन्म लेने वाला बालक जिस प्रकार अपनी जननी का स्तन पान कर कालक्रम से अन्य पदार्थों-तत्वों को ग्रहण करता हुआ अपनी जननी को आकार-प्रकार-आचार-विचार आदि में पीछे छोड़ता हुआ कभी-कभी इतना आगे निकल जाता है कि सामान्यतः विश्वास करना कठिन हो जाता है कि यह इसी जनरी का जातक है, उसी प्रकार 'भक्ति' शब्द के विराट स्वरूप-विस्तृत व्याख्या के समक्ष 'भज्' धातु वामन ही ठहरती है किन्तु भक्ति का त्रिविक्रम स्वरूप है इसी वामनावतार 'भज्' धातु की सुदर्शनीय छवि ही। संक्षेप में कहा जाये तो भक्ति की वह सुदृढ़ धरातल है जिस पर धर्म - अर्थ - काम - मोक्षाधारित भारतीय संस्कृति का सिंहासन निश्चल रूप से टिका हुआ है। भारतीय इतिहास में ध्रुव-चरित्र का आधार यही निश्चल भक्ति है। जिसके शौर्य-धैर्य ने आयु - वर्ण - ज्ञान - साधन-परिस्थिति आदि सभी को एक साथ परास्त कर भक्ति की पाषाण प्रतिमा को मात्र मंत्रों से नहीं अपितु परकाय-प्रवेश विधि से प्रामाणिकता पूर्वक प्राणमयी बना डाला। उसके फहराते हुए दुकूल के प्रतिकूल कूलों को स्वानुकूल बनाकर अनंत-अगम्य भवसागर का मात्र एक कूल नहीं अपितु ऐसा सुरक्षित-सुरम्य सुकूल बना डाला कि़ जहां बाल्मीकि - वेदव्यास - कंबन - तुलसी - सूर - मीरा आदि के पोतें ने आश्रय लिया, वहीं कितनी ही तरणियों-डोंगियों को आश्रय मिला। भक्ति के आचार्य माने जाने वाले शिव-ब्रह्मा-सनकादिक के महापोत भी जहां से ठिठके बिना आगे नहीं बढ़ प्राते।

ध्रुव चरित्र में भक्ति अपने अंतर्द्वन्द से अपने ही स्वरूपों के द्वन्द से जिस प्रकार टकराती है, उभरती है, वह तो अद्‌भुत है। भक्ति का स्थायी भाव आसक्ति है। भेदोपभेद से वह सात्त्विक-राजसी तामसी चाहे कुछ भी कहा जाये परन्तु उसके मूल में आसक्ति अवश्य रहेगी। नारद भक्ति सूत्र में तो इन आसक्तियों की विधिवत् तालिका ही दी हुई है, यथा-

'गुणमाहात्म्यासक्ति - रूपासक्ति - पूजासक्ति - स्मरणासक्ति - दास्यासक्ति - सख्यासक्ति - कांतासक्ति - वात्सल्यासक्ति - आत्मनिवेदनसक्ति - तन्मयासाक्ति, परमविरहासक्ति' कहना न होगा कि ध्रुव की भक्ति में इन सभी आसक्तियों का यत्र-सत्र दर्शन होता है। इन समस्त आसक्तियों के सम्मिश्रण से जो जिस माधुर्य भाव की सृष्टि होती है, वह तो 'मूकास्वादनवत्' गूँगे के स्वाद के समान है। भक्तिमती मीरा के शब्दों में 'हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेर्‌यो दरद न जाने कोय' यही तो मुखरित हो रहा है। प्रत्यक्ष रूप से हम देखते हैं कि जिस पदार्थ को जितना घिसा जाता है उतना निखार आता है। इसी प्रकार जो जितने दुःख - कष्ट विरह - वेदना - विपदा - विघ्नों को हंसकर झेल लेता है उसका मनोबल इन दूषणों को कालान्तर में अवश्यमेव आभूषण बना डालता है।

विमाता के विष में बुझे हुए तीखे बाणों से शब्द सीधे मन पर चोट कर गये क्योंकि ढाल के रूप में पिता के जिन शब्दों की उस समय अपेक्षा थी, वह नहीं मिले। माता की गोद में सांत्वना कहां से मिलती, वह तो स्वयं ही भर्त्सना की पात्र बन बैठी थी। उस निराश देवी ने छाती पर पत्थर रखकर तपस्या के लिये वन का मार्ग दिखा दिया। साधक के सत्संकल्प ने सिद्धि के महापौर की मानो अर्गला ही सरका दी जब मार्ग में ही 'लभ्येतेऽपि तत्कृपयैव' के अनुसार देवर्षि नारद के रूप में भगवान् की करुणावतार कृपामूर्ति से साक्षात्कार हुआ। माता ने जो गुणमाहात्म्यासक्ति प्रभु के गुणों का वर्णन कर उत्पन्न की थी, उसी ने ध्रुव में क्रम भंग कर आत्मनिवेदनासक्ति की जड़ जमा दी। भगवान् के स्वभाव में तो अद्‌भुत

कृतज्ञता है। उन्हें तो कोई केवल पलकें झुकाकर ही प्रणाम कर ले तो वे स्वयं उसके ऋणी बन जाते हैं। अतः उन्हीं के हृदय में जो भगवान ओर भक्त का भेद समाप्त करने वाली वात्सल्यासक्ति ध्रुव के प्रति हुई / उसी का परिणाम देवर्षि-दर्शन मानना चाहिये। साहूकार का साहूकार को दिया हुआ धन जिस प्रकार ब्याज पर ब्याज, चक्रवृद्धि क्या गणितातीत - ब्याज अपार लाभ में से निरन्तर देता चला जाता है परन्तु एक उस मूल धन को अपने धन का मूल मानकर, उससे सहस्रगुणा ब्याज देकर भी नहीं लौटाता तो दूसरा भी उसे अपनी आय का अक्षय स्रोत मानकर मांगता नहीं, यही भक्त और भगवान के संबंध की स्थिति ध्रुव चरित्र में प्रत्यक्ष है। धीरे-धीरे समस्त आसक्तियें ध्रुव का आश्रय अनायास ग्रहण करते-करते उस प्रभु-आश्रित बालक को प्रभु का ऐसा आश्रम बना गई जिसने युग - युग में अनेकानेक भगवद्-आश्रयकांक्षियों का आश्रयदाता बना डाला।

भक्ति को किसी ने 'प्रेम पदार्थ' किसी ने 'रहस्याति रहस्य' किसी ने 'अतिसहज' किसी ने 'परमतत्त्व' आदि - आदि न जाने क्या - क्या माना और यह है भी सत्य किन्तु कोई सन्त - महात्मा इसका वर्णन करें तो ही शोभा है। मुझ जैसे एक सामान्य जन के द्वारा तो यह 'अनधिकार' क्षेत्र के अंतर्गत ही मैं मानता हूं। मुझे तो सुदामा - चरित्र के रचयिता भक्त सुकवि पूज्यपाद श्री नरोत्तम दास जी की कृपा से इस कल्पवृक्ष के मधुर-फल के रस की जो दो बूँदें मिलीं उन्हीं ने मस्ताना कर दिया। वह मस्ती लिखाती गई, मैं तो मंत्र - कीलित मूढ़ सा उस श्रुतलेख को केवल लिपिबद्ध करने वाला लिपिक ही हूँ।

हुआ यों कि एक दिन अचानक वर्षों पूर्व सुदामा - चरित हाथ में आ गया। पढ़ने का अवसर पहले भी मिला था किन्तु कभी भी भूमिका नहीं पढ़ी थी। इस बार वह पढ़ी तो विदित हुआ कि श्री नरोत्तम दास जी ध्रुव-चरित्र भी लिख रहे थे परन्तु उसकी प्रति मिलती नहीं। न जाने उनका पांचभौतिक शरीर रचना के पूर्व पंच-तत्त्वों में विलीन हो गया कि पांडुलिपि कहीं दबी पड़ी हैं अथवा

विधर्मियों के द्वेषानल की भेंट हो गई? क्योंकि तक्षशिला - नालंदा - मथुरा - काशी - काश्मीर - देवगिरि - उज्जैन - कांची - कामाक्षी आदि जो - जो हमारे शिक्षा-क्षेत्र थे, धार्मिक-क्षेत्र थे वहां तो विधर्मी-आक्रान्ताओं ने जो नग्न-नृत्य किये वे यद्यपि आज दबाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं किन्तु उनके चिन्ह तो दबाकर भी नहीं दब पा रहे हैं और देव-मूर्तियों के साथ - साथ जिनका विध्वंस करना उनका लक्ष्य रहा वे हमारे पुस्तकालय ही रहे। किसी भी देश की सांस्कृतिक धरोहर के कोषागार उसके पुस्तकालय ही तो होते है। यदि किसी देश को, समाज को, सदैव - सदैव के लिये पराभूत करना हो तो उसकी संस्कृति नष्ट कर देना पर्याप्त है। सिकंदर से लेकर गज़नवी - गौरी - तैमूर - चंगेज़ आदि सभी लुटेरे बन कर आते रहे जाते रहे, परन्तु फिर उनके विपन्न देश छिन जाने और यहां की सुजला - सुफला - शस्यश्यामला - मलयजशीतला भूमि ने उन विधर्मी - विदेशियों को यहीं बस जाने के स्वप्न देने आरंभ कर दिये। इन स्वप्नों को साकार करने का कार्य किया हमारी पारस्परिक फूट ने। भीषण नरसंहार ने रहने को धरती खाली कराई। लूटपाट ने रीते कोष भरे। अत्याचारों ने मनोबल तोड़े तो संस्कृति को निर्वंश करने के लिये मंदिरों - मठों - गुरुकुलों और पुस्तकालयों का विध्वंस आवश्यक था सो शताब्दियों तक निरंतर चला किन्तु यूनान - मिश्र - रोम और अरब आदि की संस्कृति को निगलने वाले अघासुर भारत की श्रुति - परंपराधारित संस्कृति को निगल - निगल कर भी चबा नहीं पाये। हम उन्हें समय - समय पर रक्त - वमन करा - करा कर स्वयं भी रक्तस्नात होकर भी आरक्त रहे। उसी के प्रभाव से आज जैसे - कैसे भी हैं परन्तु हैं जीवित।

अस्तु, इतिहास का विद्यार्थी हूँ न, सो प्रस्तुत विषयानुसार तो विषयांतर किन्हीं - किन्हीं को लगेगा परन्तु ध्रुव - चरित्र के न मिलने की पीड़ा ही मुझ से यह सब कहला गई उत्तर साकेत - ध्रुव चरित्र और नवरंग - मान - मर्दन आदि मेरे हृदय के विषय हैं और इतिहास मेरे मन का - मस्तिष्क का विषय है। सो वह

छूट नहीं पाया। अतः 'आरत काह न करहिं कुकरमू' मान कर मनीषी - गण कृपया मुझे क्षमा करें। फिर भी इन्द्रप्रस्थ के इतिहास के ब्याज से संभवतः शीघ्र ही इस विषय पर विस्तार से चर्चा होगी, प्रभु कृपा से विश्वास है।

बात बीच में अधूरी रह गई सो ध्रुव - चरित्र के कुछ दस - बारह - पंद्रह छंद जो मैंने सुदामा चरित्र में पढ़े, उनकी चर्चा ब्रह्मलीन डा. दशरथ जी ओझा से हुई। वे तो परम विद्वान और अनेकों पुस्तकों के रचयिता होने के साथ - साथ हृदय के अत्यन्त सुकोमल - परमवैष्णव थे ही, उन्होंने तुरंत हँसकर आचार्य प्रवर डा. हजारी प्रसाद जी द्विवेदी के उन्हीं वचनों को दोहरा दिया जो उन्होंने उत्तर-साकेत के कुछ अंश सुनकर कहे थे कि 'श्रीराम का उत्तर चरित्र गो. तुलसी दास तुम्हारे लिये ही छोड़ गये थे' तो श्रद्धेय ओझा जी ने भी यही कहा कि ''भैया रामरंग! ध्रुव - चरित्र अधूरा नरोत्तम पूरा करने के लिये यह तुम्हारे लिये ही छोड़ गये हैं। इसे पूरा करो।'' मैंने कहा कि उनकी सी मधुर भाषा - ललित शैली मैं कहां से लाऊँ? तुरंत प्रश्नात्मक उत्तर मिला 'ये और भाषा - शैलियें तुम कहां से लाये?' मैं क्या कहता, शिर झुकाकर यही कह सका कि 'यह तो मां की कृपा है।' उनके मुख से तुरंत वरदानात्मक शब्द निकले ''निश्चय करो - संकल्प लो, मां बारंबार कृपा करेगी। उस कृपामयी पर विश्वास करो।'' सो यह जैसा - कैसा ध्रुव - चरित्र तो आपके सम्मुख है किन्तु जिनके आशीर्वाद से यह संभव हुआ, उन श्रद्धेय का श्रीमुख आज आँखों में ही बसा रह गया है। उनके चरण तो मुझे मानो अस्पृश्य मान कर ब्रह्मलोक चले गये, यही दुःख है।

अस्तु, भक्तवर नरोत्तम दास जी की अँगुली थाम कर उनका यह बालक कहां तक उनके मार्ग पर चल पाया है, यह निर्णय तो आप पाठक वृंद ही करेंगे। मैं तो केवल उन्हें प्रणाम ही कर सकता हूँ। उन्हीं के भंडार के चार चावलों में मां की दी हुई दाल मिलाकर जो खिचड़ी बनी, वह मैं तो परोस चुका। स्वाद का विषय तो भोक्ता का होता है।

यह आत्मनिवेदन यदि साहित्य जगदाकाश के वस्तुतः दिशा-दर्शक ध्रुव - स्वरूप परम श्रद्धेय आचार्यवर डा॰ नगेन्द्र जी के श्रीचरणों में अभिवंदन निवेदन किये बिना विराम लेता है तो वह सौभाग्य-नक्षत्रराज को ही विराम देने जैसा कुकृत्य होगा। उनकी अहैतुकी कृपा ने कितने कुलिश-कपाटों को पारदर्शी-पटों के समान सरका दिया, यह संभवतः वे भी नहीं जानते किन्तु मेरी आत्मा और परमात्मा तो जानते हैं। अतः जिनके अक्षय आशीर्वाद के अभेद्य कवच से आवृत होकर 'गृह कारज नाना जंजाला' के चक्रव्यूह में अक्षत रहते हुए मां को यह दो पुष्प समर्पित करने का सुअवसर प्राप्त कर सका हूँ, उन परम् तत्त्वविद् - मनीषीप्रवर डा॰ नगेन्द्र जी की अभिवंदना करते हुए अपने इस सामयिक आत्मनिवेदन को विराम देने से पूर्व यदि मैं मान. डा. रामशरण जी गौड़ के प्रति कृतज्ञता प्रकट नहीं करता तो यह एक प्रायश्चित्-विहीन पातक ही होगा। आज जिन महान् (तथाकथित) बुद्धिजीवियों ने साहित्य को संजीवनी प्रदान करने वाली ब्रजभाषा को 'मृत' 'कालातीत' की संज्ञा प्रदान करने में निस्संकोच उदारता बरती है वहीं साहित्य के इन सरस मर्मज्ञ ने इस कृति को प्रकाशन - योग्य मानकर ब्रजभाषा की महिमा-गरिमा को जिस सात्त्विकता से समादर - स्नेह प्रदान किया है, वह वस्तुतः इन्हीं के योग्य है। हिन्दी अकादमी दिल्ली को सचिव के रूप में प्राप्त डा. गौड़ जी निस्संदेह मां भारती के प्रत्यक्ष वरदान की प्रखर प्रतिमूर्ति ही हैं।

विनीत :

सोहन लाल रामरंग

श्री गुरु पूर्णिमा, २०५२ वि.

१२ जुलाई १९९५ ई.

श्री हरिः

साभिवंदन

श्री ध्रुव बाल - चरित्र के बीजन डारि जे जाय बसे हरि - धामा।
शारदा पौन, कृपा जल ईश को, पाइकै या अँकुराइ कै जामा।।
राम कौ रंग कहैं जेहिं, लेखनि स्वामिनि माली को सौंप्यौ सुकामा।
लेंय नरोत्तमजू हरि - लौं निज चाँउर राँध्यो जो बाल सुदामा।।

विषय सूची

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्रस्तावना

कुंडली :

जिन रचननि हियरे भयो, हरि कौ काव्य प्रकास।
तहां सुदामा-चरित कौ, अपुन्यौ बिलग बिलास।।
अपुन्यौ बिलग बिलास, लास-रत भगति भगवती।
किये सत्त्व श्रृंगार, विभासित विभव भारती।।
सुकवि नरोत्तमदास, जौहरी कौस्तुभ - मणि को,
'रामरंग' सिसु तासु, दासु सोवैया फणि को।।

सवैया

तिनके ध्रुव-चारित अंस विलोकि कै मोद भयो, पुनि सोचु महा।
कवि पूरे भये बिनु पूर्यौ किये, गयो छीजि, छिप्यौ कि यहां कि वहां।।
हरमानि हमाम हलाल भयो, बिनु जाने कहैं तौ कहें भी कहां।
सिसु हाथ लियो यहि जानि कै सेष या श्राद्ध हमारेइ हेतु रहा।।

छप्पय :

मंगलाचरण

गुरु-गनेस-वागीस-श्रीस-ध्रुव कौ करि वंदन।
करौं नरोत्तमदास नमन, करि-करि आवाहन।।
मंजु भारती-अंक विराजि, विराजिय लेखनि।
सहित स्वभाषा-सैलि-भाव-भावना लुभावनि।।
'रामरंग' से अज्ञ को, अज्ञ जानि निज विज्ञवर।
ज्यों हरि ध्रुव-सिर कर धर्यौ, धर्यो देव! त्यों दास पर।।

श्री ध्रुव चरित्र

दोहा : कथा प्रवेश

सुमिरि गनप गिरिजा-सुअन, वरनौं सु-ध्रुव चरित्र।
जो बांचै दृढ़ नेम सों, पावैं भगति पवित्र।।१।।
ब्रह्मा के मानस-सुअन, नृप उत्तान सुपाद।
चालैं प्रजा विवेक सों, गहे वेद-मरजाद।।२।।
महिषी तिनकी पतिव्रता, ज्ञानवती सुखदानि।
नाना-विधि मरजाद सों, ध्यावहिं सारँगपानि।।३।।
नाम सुरुचि दूजी जु तिय, रूपरासि की खानि।
राजा वाके प्रेम बस, प्रथमहिं तज्यौ निदानि।।४।।
ध्रुव जनमे बड़ि रानिते, मातु-गुननि अनुहार।
सुरुचि रानि की कोखते, उत्तम राजकुमार।।५।।
एक दिवस ध्रुव प्रेम सों, बैठे पितु की गोद।
देखि लियो तौ लौं सुरुचि, राजा - पुत्र विनोद।।६।।
कह्यौ बुरो अति नृपति को, ध्रुव को दियो ढकेलि।
राजा तिय के प्रेम-बस, कछु कौ सके न बोलि।।७।।

कुंडली

जौ चाहे नृप-गोद तू, ध्रुव सों कह्यौ सरोख।
तौ पुनि जनमौं आइकै, मेरी उत्तम कोख।।
मेरी उत्तम कोख, लाडले उत्तम जैस्यो।
सुन्यौ रहितवनि-पूत! गोद पितु नृप की बैस्यो।।
कलप-कलप भरि, कलप-कलप जा बन-बन तप कर।
आन प्रगट मम कोख, अमित लै सुर-सुर सों वर।।८।।

सोरठा

दुखी भयो बहु बाल, रोवन लाग्यौ फूट करि।
चलि दीन्हौ तत्काल, ध्रुव निज जननी के निकट।।९।।

दोहा

गयो तुरत निज मातु पै, कथा कही समुझाय।
बोली सो दुख सों भरी, सुनहु तात चित लाय।।१०।।

सवैया : माता का उपदेश

जग को सुख-संपत्ति-मोद वृथा, धरिये सुत! ध्यान हरी - पद को।
जिनके गुन गावत गीध तरयौ, छुटिगौ ग्रह-बंध महागज को।।
मुनि नारि 'नरोत्तम' छूटि गई, ज़िनके पग की धरि धूरज को।
तिनकौ तुम ध्यान धरौ जिय सों, निहचै करि लेहु महापद को।।११।।

पुतल्यौ पँचतत्तन कौ तन या, जड़-मोहन नाँहिन चेतन को।
वय काटत सांसन-स्वांग किये, सर-कोस या काल-सरासन को।।
जमराज के भोजनागार करैग्यो या काज किसी दिन ईंधन को।
यहि ते ऋषि-झारि विचार कौ सार भजे नर नित्य नरायन को।।१२।।

जग स्वारथ कौ व्यवहार भर्‌यौ, नित औसर ताकत वायस सो।
पयसागर देखन माँहि दिखै, परसे मृगत्रासक के रस सो।।
उजर्‌यौ सो उजारि उजैर्‌यौ करै, मन मीन भखै धक से बक सो।
कोउ पीर-हरैया धरैया ना धीर कौ भीर मैं बीर अधोक्षज सो।।१३।।

सुत! गर्भ में धारि कै जो जननी नहिं गर्भ को बास छुरावति है।
न नरी, वा खरी-कुकरी जग-पंक कौ आपु सो अंसु बनावति है।।
हरि लोपि, लगावति लोक-कला, पय के मिस वा बिस प्यावति है।
जनमानि की बैरिन डाकिन वा जननी बनिकै जग लावति है।।१४।।

सोरठा

सो प्यावै इक बेर, अक्षय क्षुधा-तृषा हरै।
कोउ प्या सकै न फेर, तौ जननी, जमनी न तौ।।१५।।

सवैया

तव भाल के अंक उजारन को, निज अंक उजार रही, सुन रे।
भव सागर तैरिकै पार करै, जग कोटिनु में बिरला इक रे।।
श्रुति-पंथ सुपंथ सो सेतु अनंत अभै-नृप-पंथ अभी चल रे।
दृग फेर सकेर न छार-असार की, श्री हरि को भज रे, भज रे।।१६।।

हरि-पंथ न पंथ पलायन को, नहिं कायर-क्रूर-कपूतन को।
भगती-पथ राग-विराग भर्यौ, सिरमौर समग्र सुपंथन को।।
परमास-विभासित बीर-व्रती-यति-दानि-सतीन सनातन को।
सिर राखि हथेरि पै जीतोइ जात है या रन संसृति भीषन को।।१७।।

सोरठा

सुनि माता के बैन, परम मुदित, अति चकित चित।
भरि संकल्प सुनैन, बोल्यौ सरल-हृदय गिरा।।१८।।

सवैया : ध्रुव उवाच :-

कहुँ मातु! कहां मिलिहैं हरि वे, जिनको तुम नाम सुनायो अबै।
अबहीं तप-ध्यान सुजोग धरौं, हमको हरि आनि मिलैंगे कबै।।
करिहैं इतनो किमि प्रेम हमैं, करती जितनो तुम मातु अबै।
पहिचानिहैं मोंहि कहां पुनि वै, मिलिकै दुख दूर करैं कि सबै।।१९।।

कवित्त : सुनीति उवाच :-

"हां-हां, सुनु लाडले वे नाथ लोक-लोकन के,
आप उपजाय, आप पालते - सँहारते।

यों तो कितु नाहिं, कब नांहि, कौन में हैं नाँहि
अमित-अनूप रूप नित्य नव धारते।।
मध्य क्षीर-सागर के सुंदर बैकुंठपुर,
सगुण - सुदर्शन को, भक्त पै विचारते।
श्रीजी रूपरासि की जो रासि पद चाँपति वे
स्यामल सुतनु शेष-शैया पै विराजते।।२०।।

साजे मोर मुकुट सुभाल में तिलक दीने,
स्रवननि कुंडल दिखावत विचित्रई।
कहत 'नरोत्तम' नयन अति भोले-भोले,
कामदेव जी ने मनु देखन की चित्रई।।
संख-चक्र-गदा-पद्म सोहैं चारों हाथन में,
पीत पट ओढें, लाजैं सुंदर सुरत्रई।
ध्यान जो धरो तो पहिचानिहैं वे आगे-आगे,
देखनि अलौकिक दिखावें तुम्हें पुत्रई।।२१।।

जैस्यो नील-कमल सो मंजुल बरन तन,
मृदुल सहसदल-दल सो स्वभाव त्यों।
हरिजू कौ प्रेम देखि लागत जगत-प्रेम
कारी-कजरारी तन सुंदर की छाँव ज्यों।।
हरि के हजार कान जैसे ही पुकारत जो,
दर्स इमि देत लागे याहीं हरि-ठांव ज्यों।
राम-रोम हरि को चिन्हारी आपोंआप देत,
होत त्यों आराधित आराधक को चाव ज्यों।।२२।।

सवैया

रवि ज्यों रवि सो, दधि ज्यों दधि सो, हरि के उपमा-उपमान हरी।
फल आपनि आप कृपा के हरी, दृश दानि दृगान की खान हरी।।

हरि प्रेम की मूरति, प्रेमि सिरोमनि, प्रेम के प्रेय महान हरी।
सुनु लाडले! जानले त्यों हियरे, दइहैं हरि की पहचान हरी।।२३।।

मातु ढकेलि दियो तुमको, पितु-गोद सों सोच नहीं कछु ताको।
अब जाहुँ महापितु की तुम गोद, सकै नृप उत्तम पाइ न जाको।।
वहि गोद सों कैसे ढकेलैं तुम्हें, थिरथान लहौं लहिकै तुम वाको।
जेहि के उर प्रेम लसै हरि कौ, नहि संक, मिलै हरि को पद वाको।।२४।।

कुंडली

सुनि माता के बयन असु, हिय भो अमित प्रमोद।
चले मुदित मन ध्रुव लहन, परम - पिता की गोद।।
परम - पिता की गोद, लोटि जननी के चरननि।
सुत हि यला दइ मातु, असीसनि तरल विलोचनि।।
झर-झर छाती झरन - लगी, भइ गाती गीली।
कहि न सकी 'रुक, जाव' रसन जनु रसना कीली।।२५।।

सवैया

दृग-तार्यौ ज्यों सम्मुख ते निकस्यौ, दृग-तारे छिपे घन सावन के।
मुँह आवन लाग्यौ करेज्यौ ज्यों आवन दृश्य लगे चित कानन के।।
गजमारी लता लौं सुनीति गिरी, गिरे पाहन ज्यों मन पै मन के।
डकरावति धेनु सी सीस धुनै, अरि प्रान पुराने लगै तन के।।२६।।

कवित्त

सोचै लागी करि मनुहार पय प्याएगी को
बिजन बिजन करि हिय ला सुआएगी।
भय बाघ-नाग को दिखाइकै बचांयौ जाँहि,
तांहि सांचे बाघ-नाग दिखे को बचाएगी।
सावन झरनि, जेठ तपनि, हिमनि पौसी,
ढाल लौं स्वमामता को लाल-भाल छाएगी।

गगन ढ़केले मैया-पूत तूही मैया! झेले,
तूही बिरदाचल स्व अचले! निभाएगी।।२७।।

विधि सों पतंग परजंत तोसे नाता एक,
मैया! मैया-संतति को याद सो कराय के।
पापनी हौं पाप की, तू धरनी धरम-जनी,
आवै धाय धाम ते ज्यों जायो, थाम धाय के।।
तूही पेट काढ़ेन के पेट में ते काढ़ि-काढ़ि
पाले नित पेट, दियो पट्यौ ज्यों लिखाय के।
भेद तेरे पूत कौ, सपूत कौ, कपूत कौ ना,
या ते जग माने तोहिं माता माथ नाय के।।२८।।

याके पुरुखों ते तुम पायो छकि-छकि सोम,
याद हो तो देना देवो! याहि छाँय सियरी।
माँगेग्यौ ना देना दो निंबोली तो तरसि तरु!
सरि-सरो! तृषित रहे न तनु - आँजरी।।
गोड़े गाड़ि पेट, लगि बाँह निसि काटि लेग्यौ,
दीजियो वितस्ता भरि की रि महि! सांथरी।
कोख तौ अभागिन की, बीज तौ नृराज कौ पै,
फैली छतरानी की न छितराना आँचरी।।२९।।

बनियो रे अंबर! दिगंबर को अंबर तू,
दिसि-दिसि! दिसा मोरे लालहिं दिखावना।
चाँकी तोरी बाँकी झाँकी खेलै नैना मींचा-मांची,
होवना भूडोलो! अनबोल्यो कौ हिंडोरना।।
छीर छुट्यो छोटे सो को छीर बनियो रे नीर!
संझा मैया! सांझ ही तरैया दीप जोरना।
बाघिन के छौना! मोरे छौना को खिलौना होना,
अंडजो! ममांडक सों आठों जाम खेलना।।३०।।

सोरठा

दिन धौले तजि धाम, जायो धायो धाय करि।
लाज धरित्री नाम, धरे! राखु, करि आपुन्यौ।।३१।।

कवित्त

उठि लागी बारी तौ निहार्‌यौ नान्हे-नान्हे पग,
एक साथ सौध-सीढ़ी कई-कई फाँदतो।
नोंचि-नोंचि फेंकत्यो सुतनु सों विभूषननि,
सावन ज्यों केकनि कौ पाँखनि कौ त्यागतो।।
छीन तन राखी कटि छोटी सी लँगोटी एकु,
राग ज्यों विराग अनुराग को सिखावतो।
लाग्यौ ध्रुव कोउ परिब्राजक ज्यों आइ रौरौ
जमहिं दिखाइ खाते खता 'खरो' धावतो।।३२।।

निकसि प्रासाद ते ज्यों ध्रुव आयो सिंहपौर,
बोले कई सेवक - सचिव धोक, टोक के।
'कैस्यो या कुवेष करि कितु को कुमार चले,'
बावले से ठाड़े भये राह रोक-रोक के।।
जान - जान कारन सो जान सी निकरि गई,
आए भरि नैन-नैन पारावार सोक के।
बोले कर जोरि ध्रुव 'आसिस दो बालक को,
करैं कृपा बेगि श्रीश ईश लोक-लोक के'।।३३।।

सवैया : प्रजा की प्रतिक्रिया

कुल-लीक तजी धरनीसर ने घरनी-घघरा कइ लीक बने।
सित संख के अंक निसंक हने, कर पंक कलंक सभे अपने।।
अँगना-दृग अंगन के अँगना अँगहीने सौं कौन से रंग छने।
मनुजात सों हा मनुजाद भये, मरजाद बिसारि दई नृप ने।।३४।।

श्रुति-स्रोत धुनी धनि सी नृप की, मरु कीन्हि दई! तिय झांझन ने।
हरि की छवि छाके सुनैनन में, अघ अंजन आँज्यौ कि आकन ने।।
करुना-रस कोष कि कोख को सोख, भरो विष भाजि कुभाजन ने।
रहिं मौन गिरा, पै गिरा दियो मान नरेस कौ नैनन-नैनन ने।।३५।।

दोहा

विवस सचिव सव से रहे, आत्मज आत्मा गौन।
चित्कारूयौ हिय मातु को, लखि-लखि भौन कुमौन।।३६।।
हरिगृह छवि - सम्मुख गिरी, बल्लरीव छवि छीन।
जीव विहीनी देह सी, जीवन विरहित मीन।।३७।।

कवित्त : सुनीति - विलाप

मनि-हीनी अहिनी सी महि-पै पछारे खाती,
भीतिन बजाती माथा कुंतल उपारती।
कैसे या पजारे-जोगी कह्यो 'बन जाव सुत!'
रोकौं किमि जाय गति, सुगति लखावति।।
सुन्यौ 'घनघोर - दुख देखि, छाती फाटि जाती'
'छाती या ना दुःख घोर' नाहिं सोचि पावती।
उदर निकारूयौ जात, प्रान ना निकारे जात,
माई कि कसाई, याहि सोचि-सोचि लाजती।।३८।।

बड़ी - बड़ी रानी बड़े भूप की बखानी जाऊँ,
धीर कौ धरैया एक आँसू कौ पुँछैया ना।
जागत्यौ न कौन जाँहि गाय कै जगाऊँ धाय,
देखत्यौ न कौन एक दीखै पै दिखैया ना।।
पुरूयौ पुर पूरूयौ परिजननि बिजन भयो,
लागत मसान, एक छान कौ छवैया ना।
काल्हि जग कहैग्यौ कि आपुन्यौ निकारूयौ आपु,
जायो ध्रू कसाइनि को, जायो याहि मैया ना।।३९।।

सवैया

ताप बढ़्यौ तप क़े अनुमानत, धीसुख - राजिन धी अकुलाई।
नैन घिरे घन सोच सुनीतिहिं, देखि सुरूचि मघी धुकि धाई।।
कानन सोचत बाढ़ बढ़ी, नृप सूर गई सुरताई सुराई।
ही भयो 'हा' कौ अकार, लगी करुना हरिजू की अगस्ति की नाई।।४०।।

दोहा

गिरा निरास निराश्रिता, रुद्ध स्वराह निहार।
रोम-रोम ते कढ़ि चली, धारि पुकाराकार।।४१।।

कवित्त : सुनीति की प्रार्थना

तारी मनुराजा तरी, मंदर मथानी धरी,
गज गाज परी, आए बिहग बिहायके।
चीरि कै पताल को कपाल भू निकाल लाए,
जीवन के जीव राखे सुधा प्रकटायके।।
देके श्रुतिज्ञान सुविहान कौ आव्हान कियो,
भुवन विधान कियो पलक उठायके।
चल्यौ राह आप ही की बालक या आप ही कौ,
राखो रमानाथ! आपुन्ये कौ अपुनायके।।४२।।

छप्पय

श्रीपति हरि-वैकुंठ शेषशायी बनवारी।
चक्रपाणि - गोविंद - दिव्य गोलोक बिहारी।।
हृषीकेश - अखिलेश - विराट - विहगपति वाहन।
पीतांबर - प्राणेश - अधोक्षज - शौरि - सनातन।।
पद्मनाभ - पंकजनयन - कंजवदन निज कर-[illegible]।
'रामरंग' शिशु - शीश धारि, करहुँ सद्य मंगल सकल।।४३।।

दोहा

चल्यौ राह सम्मुख परी, करि पितु - पुर - पथ पार।
हरि - दर्शन संकल्प भरि, दृढ़ चित नृपति - कुमार।।४४।।

सवैया

तप तेज लह्यो, जप ओज लह्यो, मख माखन रूप अनूप धर्यो।
निगमागम पृष्ट बिशिष्ट लहे, रसना रस - बोध विशुद्ध भर्यो।।
निरवाण निषंग सुबाण लह्यो, उतसादन धर्म-वपू निखर्यो।
हरि की भगती भइ भाग्यवती, ध्रुव को पुर - पौर ज्यों पैर पर्यौ।।४५।।

सिर नाइकै भीत अनुग्रह मांगहिं कुग्रह, सुग्रह बौने परे।
कलपद्रुम नंदन बंधन मानि, सुरेस लतार्यौ खरे ही खरे।।
महि पाग लगी कलगी लखि, सिंधु में बिंब अनंत अनंद भरे।
हरि प्रेम - पयोधि रसामृत कुंभ धरे ध्रुव सीस धरा उतरे।।४६।।

दोहा : नारद मिलन

मारग में नारद मिले, देख्यौ ध्रुव को जात।
बाल - वचन दृढ़ नेम सुनि, पुनि - पुनि मुनि पुलकात।।४७।।
परखान को संकल्प की, दृढ़ता बोले संत।
हृदय परम सु - सहाय को, भाव विशुद्ध अनंत।।४८।।

सवैया (नारद उवाच)

सुत? जात कहां, बन है अति घोर, न कोमल गात तुम्हारे सहैं।
नहिं पांय मिलैं नर देखन को, सिंघ-बाघ से हिंसक जीव रहैं।।
पथ है नहिं सूधो, खुले बन में विष - धारने नाग भयाने कहैं।
अति झाड़ - झँखाड़ कटीले अहैं, अरु भूमि तपै सँग लूकैं बहैं।।४९।।

तहँ राति भयावनि भारि लगैं, सुनि कै सुर - रौ बन जीवनि के।
बहु भूत-पिसाच मचावत दुंद फिरैं चदि ऊपर डारनि के।।
बन में न मिलैं हरि, हां मिलिहैं तन नोंचि खवैया हजारनि के।
फिरिये घर, आस तजौ हरि की, नहिं फेर परो इन रारनि के।।५०।।

(ध्रुव उवाच)

बन में हमरो सिंह - बाघन - नागन - झाड़ - झंखाड़ सों काम कहा।
मिलिहैं हरि सों चढ़िकै कनियां, कहिहौं हिय कौ सब दुःख अहा।।
जिहिं भाँति दियो हमको नृप ठेलि, विमातु कह्यौ अपसब्द महा।
लख्यौ होय कहूँ बन मैं हरितौ, तुम बोलो, रहैं हरिजू पै कहां।।५१।।

(नारद उवाच)

बन में तुमको मिलिहैं न हरी, दिन - रैन तहां डरु ही डरु है।
जग मैं धन - धान बड़्यौ सुख है, तप दुःखन के दुख को घरु है।।
भगती भगती है भगावति है, घर जाहु तुम्हैं घर ही बरु है।
तुम झूठे बकाये लग्यौ केहिके, हरि - प्रेम मरीचिन को मरु है।।५२।।

(ध्रुव उवाच)

सुनि दीननि की सुधि लेत सदा, मिलिहैं हरि वै महि कानन मैं।
लघु बालक हौं न सधै तप - जोग, रिझाय सकौं नहिं गायन मैं।।
हरि को बिनु पाय नही टरिहौं, छनिहौं बन - धूरि पयानन मैं।
नहिं खैहों कछु, न कहूँ रुकिहौं, जब लौं न मिलैं हरि कानन मैं।।५३।।

(नारद उवाच)

निगमागम खोजिकै हारि गये, कहि 'नेति' छुड़ाय के पिंड परे।
मुनि कोटिन साधन बूड़ि बुढ़े, कोउ जानत नाँहि जिये कि मरे।।
अहि - सेज परे दिन - रैन रहें, दृग जाने न कोइ मुँदे - उघरे।
मनुहारि करैं विधि - शंकर कोटि, प्रवेस न दैं पवि लौं पहरे।।५४।।

सुकला सकला सु - कलानि की जो, कलिका लौं सुकोमल वा कमला।
अचला भइ चाँपति पाइ सदा, जग जाँहि कहे चपला - चपला।।
कबहूँ न कह्यो 'तुम थाकि गईं, बिसराम करो पल स्वल्प हला'।
हरि से निरमोहिके मोह महा पगले! किमि कोह -किला निकला।।५५।।

फिर जा, घर जा, पितु - गोद बिराज, हटाएँगे ना अब भूप कभी।
करि कोप तकैगी विमातु नहीं, बरसाएगी नेह दिखोगे जभी।।
चलु, साथ चलूँ पुर, काज सधै सुत! तोष लहैं तव मातु तभी।

चलु, साथ चलूँ पुर, काज सधै सुत! तोष लहैं तव मातु तभी।
जप - जोग - बिराग बुढ़ौति को राख रे! खेलन - खान की आयु अभी।।५६।।

जननी तव सौति की डाह भरी, कछु की कछु बोलि गई पगली।
नहिं सोच्यो, 'न लोक बिलोक सकैं, निकलीं गल गोलक सों पुतली'।।
घर जाय निहार, निकारिकै तोहिं, परी महि मीन बनी निजली।
मम मानि, कुचालनि ना कुचलो सुत! या असमै अनफूलि कली।।५७।।

कवित्त (ध्रुव उवाच)

ऊँच्यौ करि भाल, ततकाल बाल बोलि उठ्यौ,
छमा कर्‌यो मुनि! मां पै साँच्यौ ना आरोप है।
जैसी भरी कान अंब धीरज की खान वैसी,
ज्ञानालोक नाँहि कहूँ वा मैं यदि लोप है।।
वर - तुल्य देव - कोप, वर - मूल गुरु - कोप,
पितुवर - सुवर विमातु को सुकोप है।
जगत - प्रकासक अरुन कौ जनक जिमि
तरुन - तमस तमसा को घटाटोप है।।५८।।

मोह नाँहि, कोह नाँहि, आंह नाहिं, डाह नाँहि,
भावना को वेग ना, विराग ना मसान को।
अंब दीन्हौं ध्यान धरि, ज्ञान ते विज्ञान काढ़ि
हरि-पथ, जाको नाँहि एक उपमान को।।
होंगे हरि 'नेति' काहू ठौर काहू पंडित के,
हमरे गनेस आज पुज्यौ है कल्यान को।
पितु - ढ़िग सुन्यौ भगवंत - संत एक रूप,
ऋषि! तव दर्श खुल्यौ द्वार भगवान को।।५९।।

"पूँछौं मुनिराज! मोहिं दीन्हौं वर या कि साप"
"ध्रुव! तोंहि साप?" "मानौं वर सिरु नाय के।"

''कैसे वर - साप'' ''साप या, न भजे जाँए हरि,
वर याहि, जाऊँग्यो अनंत वय पाय के।।''
''समुझ्यौ न अर्थ गूढ़'' ''सीधो, न भजन जोग्यो,
जियौंग्यो अँगूठ्यौ जमराजहिं दिखाय के।
आवैगी ना अवस बुढ़ौती हरि - भजन कौ,
अर्थ निज गूढ़ कहो मूढ़ ते बुझाय के।।६०।।

सुन्यौ आपु जैसन सों 'काल दुरतिक्रम है'
आजु आपु बाँध्यौ काल, बाल अपनाय के।
'सिसु हेतु जम - पद कठिन सम्हार्‌यौ मुनि'
कहौं लोक - लोक नाच - नाच गाय - गाय के।
त्रिकालज्ञ आपु से, असत्य कहुँ भाखि सकैं,
'अभै भयो काल ते कहौंग्यौ हौं ठठाय के।
काल की रटंत ''हौं अटल - हौं अटल'' टारी,
जीत्यो जम ध्रुव मुनिराज - पांय पाय के'' ।।६१।।

मौन मुनि माथ निज हाथन फिरान लागे,
सोचें कितु 'बाल - वै धी - प्रौढ़' चकराय के।
अर्थ असाधारन साधारन सी बात कौ या
करि, मोहिं नाइ गयो नैंकु सीस नाय के।।
''को न घिर्‌यौ नारद के घेरे मैं गुमान मेर्‌यौ,
मार्‌यौ दै - दै मान हरि बाल - छवि छाय के।
कीन्हौं हरि नमन, नमन मन माहिं ध्रूहिं
पल में सकल भावी लखी ध्यान लाय के।।६२।।

सोरठा

लागी भाव समाधि, भए मगन मुनि पुनि स्वमन।
हरन सकल भव - व्याधि, लग्यौ सु - चित श्रीपति - चरन।।६३।।

ध्रुव जान्यौ मुनि मौन, निर्मल मन, वाणी सरल।
बोल्यौ भगती - भौन, हिय सिसु - सिष्य सुभाव बस।।६४।।

कवित्त (ध्रुव उवाच)

मानी तव, असहज दर्सन है हरिजू कौ,
रावरो दरस पै सहज कहो कौन को।
जाके अंग-अंग अंगराग बनि सानुराग
गावै हरि - राग राग, राग के सुभौन को।।
जाके बिनु व्यंजन सकल लागैं फीके - फीके,
रावरो सुभाव लाजै ऐसे लौने लौन को।
शिवा शिव पाई, पाये श्रीजू के सु - लोचन श्री,
पाय ऋषि रावरी परिच्छित सु - पौन को।।६५।।

कुंडली

पुनि बोल्यौ "हरि की कृपा, करुण सगुण साकार।
अभय - वरद मुद्रा मुदित, मिली ललित श्रृंगार।।
मिली ललित श्रृंगार, रावरी छवि पुनीत धारि।
अधबिच - पथ स्वयमेव, पूर्व श्रीहरि के श्रीहरि।।
गुरुजन गौरव मानि, गुरुर्गुरु भाषै जिनकौ।
सो सिसु - सिष्य सुहेतु, पधारे वंदन तिनकौ।।६६।।

दोहा

सुनत वचन ध्रुव के लख्यौ, हिये अचल विस्वास।
जान्यौ नारद सत्य यह, कृपासिंधु को दास।।६७।।

कुंडली

हरि - हित अतिसय प्रीति लखि, हृदय न मोद समाय।
'धन्य - धन्य' बोल्यौ हियो, छलकि - छलकि दृग जाय।।
छलकि - छलकि दृग जाय, भई रोमावलि ठाढ़ी।
मन भा परमानंद, प्रतीति प्रीति अति बाढ़ी।।
रसना रस - सरि - भँवर तीर - तरनी नहिं पायो।
रुँधे - कंठ कंठेव, कंठ मुनि ध्रुव लिपटायो।।६८।।

सवैया (नारद उवाच)

सुत! काल तौ है दुरतिक्रम ही, क्रम वाकौ टरै न त्रिदेवन सों।
गुरु मोसों कहे, सिष हौं तौ भयो, तव बानि बिभास मयूखन सों।।
नवनीत छटांक सों काढ़ि कहा, मन तक्र भरे मनि - बासन सों।
वय - बंध कहा, हरि को सो जपै, हरि जा पै द्रवैं जब जा छन सों।।६९।।

सुत! यद्यपि ज्ञान की मूरति तू, जग आयो प्रसारन कौ भगती।
कछु शेष न दीसे जो तोसौं कहौं, न कहौं धिकरे मोहि मोरि मती।।
हरि - पंथ - पथी तरुवान तरे, सो हथेरि धरे चह जो उनती।
निज तीनि सुधारन - कारन केवल बोल्यौं, भजो रे भजो स्रिपती।।७०।।

जसु जाकर वेद - पुरान कहैं, जग को करता - हरता - भरता।
यहिं कौन मैं काके न बिंब समान, पै कौन मैं ताकरि ग्राहकता।।
जग जोग अनंत हैं भोग अनंत, अनंत अलौकिक जे क्षमता।
कछु और कही न जु जाति, हरी - पद - पद्म - पराग की मादकता।।७१।।

मन माँहि प्रतीति भई प्रभु की, अति ही तुम पै करुना मति है।
भरम्यौ जगमैं तिहूँ कालन ते, न लखी असि भक्तन की गति है।।
विधि ज्ञानी मिले, हर ज्ञानी मिले, हरि ज्ञानी मिले, न कहूँ अति है।
हरिजू बस भूखें रहैं यहि के, मिलिहैं निज पाँयन की रति है।।७२।।

(ध्रुव उवाच)

"हरिजू कौ अनुग्रह - विग्रहहूँ पहिचानौं या राहहिं आजु खर्यौ।
प्रभु हौ तुम ही किमि गौर भए" कहि के ध्रुव नारद पाँय पर्यौ।।
नहिं बाल हटे, मुनि पाछे कछु बदि के पुनि बालक पाँय गह्यौ।
मुनि भूलि गयो मरजाद सबैं पल एक, खरे पद एक रह्यौ।।७३।।

कवित्त

फेंकि दीन्ही बीन निज, लपकि उठायौ बाल,
उर सों लगाय कहैं बचन सुधा सने।
"नाहिं - नाहिं हरि नाहिं, हौं तौ पूत नारद हौं"
प्रेमरस मात्यौ ध्रुव खोयो हिय आपने।
हरि - धुनि कान सुनि, प्रेम - रस - धार बनि
अंतर सों चलि रुकि पलकनि आँगने।
कोऊ समरथ न कहन सुख दोउन को,
बैठी फुर भारती कवित्त रस साधने।।७४।।

रोम - रोम मुनि को पुलकिगो सनेह - स्रुव
कहन·पुरान - रूप दिव्य हरि को लगे।
सुनत अघात नाँहि ध्रुव फेरि - फेरि ताँकै
पूँछत विविध भांति हरि - रस मैं पगे।।
मुनिहुँ अनेक भांति कहत भगति - जुत,
पुनि - पुनि अधिक उछाह रँग सों रँगे।
एक चहै भाग अहिराज को सतृष्न भयो,
दूजहिं गनेस होन स्रौन - विधि में खगे।।७५।।

नारद उवाच

चंचला कौ अंक लैके धारिकै महेन्द्र - धनु,
सावन सिँहासन विराजै मेघ भूप सा।
सकल सुनील साजे शतदल - नालिक कौ
सरस सुकोष भर्‌यौ महारस - कूप सा।।
विमल गोलोक की अलौकिक आलोक - कला
खिल्यौ, इंद्रनीलमणि ज्योतिन कौ यूप सा।
आंधी जीभ, गूँगे नैन, कैसेक बखान करैं,
हरि कौ अनूप रूप हरि के स्वरूप सा।। ७६।।

मंजुल - मृदुल रतनारे कजरारे प्यारे,
खेंय द्युति - पोतहिं ज्यों खंजन के लाडले।
धराधर धीर के अधीर पर - पीर - हर,
पारिजात परब - सुमूरति के थांवले।।
देखे, देखे जात न, अदेखे अकुलात जिय,
देखनि दिखनि सों दिखात बुध बांवले।
मदन - विमोहन विलोचन विलोकि लागैं,
इन्हीं की विलोकि छां तिलोकपति सांवले।।७७।।
ल्हैरें घुँघरारी लट चंद्रमुख, पूनौ - चौक
पौन सों ज्यों मेघमाल नृत्त नभ सीखतीं।
रतन - किरीट जनु प्रभा - विभा आभा बनि,
दशों - दिशि शोभा कौ सुभग चौंक चीततीं।।
बाँकुरौ - तिलक देवबाला वेलि चांकिन की
मंदाकिनि - तीर ज्यों उमंग भरि थापतीं।
कुंडलिनि - भृकुटि - त्रिकुटि - कुटि - नासापुटि,
झांकी रमारमन की देखि - देखि थाकतीं।।७८।।

घिरी मनि - मालन सों कौस्तुभ बिराजै हिय,
सगुन विभूति - भूति झूल्यौ डारि झूलतीं।

करतीं वासन्तियां परिक्रमा स्वसिद्धि कौ ज्यों,
कांधन को फाँदि वनमाल पद चूमतीं।।
द्युति पीतं - बसनि की करति दिसनि दिव्य,
चेतना चैतन्य पै अचेत है ज्यों झूमतीं।
पुरुष - पुरातन सनातन पै नित्य नव,
श्री प्रवीन रोम - रोम केन्द्र करि घूमतीं।।७६।।

भौंचक भौ - चक्र जा सुचक्र होत भक्तन के,
घेरत चकित करि चक्र सो कुचक्रकीं।
प्रान को प्रतीक कर - कंजु कौ सु - कंजु मंजु,
बनत त्रिताप बलि जाकी गंध - धार की।।
गदा गदाधर की खगेशी बिना पर की सी,
ढ़ली ना वा ढाल जो ढ़लैया याकी मार की।
पांचजन्य देवन कौ क्रतु, मृतु दानन कौ,
बात कहा ताके घोष - ओज के विहार की।।८०।।

जननी सिँगारन की करिकै सिँगार नित्य,
जिनकौ सिँगार लखि भावन सिँगारती।
रति रमानाथ की बिचारि के बिचारी भई
रति भरि विरति बिरुद निज वारती।।
बानी छवि - खानी लखि, पानी है उतरि नाभि
पुलकि कै बारी रोम - रोम की पखारती।
हरि अंग - अंग कौ सुसंग पा उमंग भरि,
भामिनि भगति दिव्य - भाव गर्भ धारती।।८१।।

हरिजू को शुभाकार पारावार रूप कौ ज्यों,
नानाकार धार गुन - सरि त्यों समावतीं।
प्रकृति - पति की त्यों ही प्राकृत आकृति - रासि,
अरुण लौं, करुणा - किरण सरसावतीं।।
जननी दै यौवन ज्यों युवा करिबे कूँ बाल

झुकि स्वउठान सों घुटुरन्यौ उठावतीं।
जीव जीवाधार कौ औतार निर्विकार धारैं,
लीला मेघमाला ताकी दीपति खिलावतीं।।८२।।

बनिकै ऋषिन की सो विमल समाधि - छवि,
मुनिन के सांत - चित गगन कौंधावती।
पार कर अंतराल सूनी ज्ञानि - बानिन कौ,
मेदिनी जिज्ञासुन की पुनि सरसावती।।
हरिजू की कृपा को सुबीज संत पावत जे,
तिन हरि - जनन ही कृषि लहरावती।
व्यास कृषिकार, कवि सूपकार - समाहार,
जीवमाल जिन्हतें सँजीवनि - नौ पावती।।८३।।

हरि - कथा हरिजू सों अधिक लावण्यमयी,
जीवन को पग - पग सुपथ दिखावतीं।
वेदन कौ नेति, नेता सकल पुरानन कौ,
अगम - अपार को अकार दै नचावती।।
जासों ह्वै आकर्पित महान मुक्त - आतमायें,
बेर - बेर धारि तन धरा - धूरि धावतीं।
मुकतिहुँ त्योंहि संत - मंडली प्रनाम करि,
याचि सतसंग सोई श्रवन कौ आवतीं।।८४।।

करुणा के जिमि वरुणालय रमालय हैं,
होत रस सारे त्यों सरस ताकी छांव में।
जग के छतीस ह्वै तरेसठ मायेश - माया,
राजत दुकूल जोरि हरि - नांव नाव में।।
हरि ज्यों अनंत त्यों अनंत नाम - रूप - गुन,
सुत! ज्यों संछेप सारे पांव गज - पांव में।
सकल विरोधी - भाव परमाविरोधी ह्वै के,
बसैं हाव - भाव सों गोविन्द के सुभाव में।।८५।।

दोहा

सब सारन कौ सार है, हरि सो हरि कौ नाम।
सुत! सोइ जपु, होइहि स्वतः, हिय हरि - धाम ललाम।।८६।।
किती दूरि बैकुंठ, कित - क्षीरधि, नाँहि विचार।
डारि पलक - पट ध्यान करु, हरिहूँ हियहिं निहार।।८७।।
आराधक की साधना, सत - संकल्प विचार।
साधन प्रकटैं आपही, किये सिद्धि श्रृंगार।।८८।।

सोरठा

ज्यों नहिं सकहिं बखानि, मूक स्वाद पिकप्रेय को।
त्यों हरि कौ रस जानि, सकल मधुर - मंजुल - मृदुल।।८९।।
नारद खो - खो जात, चरचा करत गुविंद की।
ज्यों पांगुलहिं दिखात, नभग - यान गति गरिमही।।९०।।

छप्पय

गिरा लटी है मौन, बने लोचन निरझरनी।
रोमावलि है गई, विपल महँ रस - पुसकरनी।।
बैठहिं, बैठि न पात, उठत नहिं पात उठन को।
मति बौराई देखि प्रौढ़ - मति बालापन को।।
लागहिं नारद देवरिषि, विजया छके अतीव से।
ध्रुव पद लखि चेते, कढ़े - ज्यों गिरि क्षय - दधि नींव से।।९१।।

सवैया : नारद आशीर्वचन

रिषिराय लियो हुलसाय उठाय, लगाय लियो हिय सौं हिय सों।
ततकाल हि बोलि उठे "रे! पराजित काल भयो रे! भयो जियसों।।
हरि! याहि बिनै, न बनै अबिनै, प्रति या सिसु के तव वा तियसों।
सुत! अंतर आसिस, बानी कहे किमि, हो हरि - प्रेयन कौ प्रिय सों।।९२।।

विघनेस हरैं हर विघ्न, हिमंत बसंत भरैं नित जीवन मैं।
वय पा विधि - व्यूहन लौं, जुग - मान कौ मान गरा छन - छानन मैं।।
तव वंश की वेलि भरी फल - फूल सदा लहरै गगनांगन मैं।
पद दुर्लभ पा, वर पा, बस जा हरि के मन सो हरि के मन मैं।।९३।।

दोहा

वर पा वर - रासीन के, श्रीवर - करनि अलभ्य।
~~मन्द~~ वा, जो नहिं पा सक्यौ, अब लगि एकौं सभ्य।।"९४।।
दियो मंत्र द्वादक्षारी, दृगनि याचना पेखि।
लखि कै पात्र विशेषता, कह्यौ सु - तत्व बिसेखि।।९५।।

सोरठा

आदिहुँ प्रणव अनादि, एकादश अक्षर सहित।
आधि - व्याधि इत्यादि, हरैं, करैं मंगल - सदन।।९६।।
दश - दिशि दोनों लोक, चतुफल दायक, काल तिहुँ।
भ्रम - तम करत सशोक, द्वादश - दिनकर सम सदा।।९७।।
आशुतोष भगवान, एकादश रुद्रन सहित।
वरदानिन वरदान, करत दनुज - दुर्जय विजय।।९८।।
गुह सों द्विगुणित शक्ति, दैवी - सम्पद् त्राण - हित।
तुष्ट - पुष्ट नित भक्ति, मन - चित दसेन्द्रियन सहित।।९९।।

दोहा

एकादसि श्रीहरि सहित, द्वादसि मुक्ति निरुक्त।
सद्य सिद्धि - प्रद हरि - हृदय, मंत्रराज सुत! गुप्त।।१००।।
ओ३म् नमो कह भगवते, पुनः वासुदेवाय।
शब्द ब्रह्म ब्रह्मांड - जित, भव गज हित वनराय।।१०१।।

छप्पय

नरकान्तक मोहन भगवान अनंत गदाधार।
वनमाली तेजस्वरूप वामन हरि सुंदर।।
दामोदर विश्वेश यज्ञ यजनीय सनातन।
गरुड़ध्वज गोविंद राम वाराह जनार्दन।।
हृषीकेश - इंद्रावरज - चक्रपाणि - लक्ष्मीरमण।
सकल लोक कारण - करण, कर सुत! प्रति पल - पल स्मरण।।१०२।।

कुंडली

वय विचारि मुनि पुनि स्वयं, बोले 'राजकुमार।
सद्य - सिद्धि शुभ - दायिनी, कालिन्दी की धार।।
कालिन्दी की धार, हरै अंतक की कारा।
होत समर्पित स्वतः चरन जग - वैभव सारा।।
हरि सो श्यामल सलिल, विमल - कल हरि - अंतर सो।
तरल तरंग प्रवाह, रमा - कंकणिका स्वर सो।।१०३।।

कवित्त

सभा में पितामैं सुत! मोसों एक द्यौस कह्यो,
कछु दिन कृष्णा और सीधे सिंधु जायेगी।
अग्रजा सों अनुजा ह्वै लेगी नाम - रूप दुरा,
जा दिन भगीरथी ह्वै गंग धरा धायेगी।।
याकौ त्याग लिखैग्यो प्रयाग - भाग 'तीर्थराज'
विव्हल ह्वै सरसुति मौन लै समायेगी।
चारों फल अर्कजा की बिखरे कछार - छार
फेर तौ कलिन्दी अरे! जान्हवी कहायेगी।।१०४।।

दीख रह्यौ पारब्रह्म काँधे पै लकुट धरि,
मोहिं सुत! कामरि लपेटे याके तीर रे।

भुवन - विमोहनि करनि अधिरनि बेनु,

ललित त्रिभंगी, करै किरमिर करीर रे।।

गुंजमाल, भाल पै बिसाल मोरपंख - जाल,

लूटि - चाटि खात नवनीत ज्यों अधीर रे।

थिरकै गँवारिन में मोरनि कौ जायौ बनि,

नाचैं ऋचा घेरि ज्यों प्रणव सशरीर रे।।१०५।।

फिरै भृगवल्लभ - कदंबन पै भृंगन सो,

डालन तमालन की डोलत प्लवंग सो।

टेरे गौरी - धौरी - कजरारी - रतनारी - श्यामा,

करबुरी - धूमरी रे! आपने ही रंग सो।।

खात छीनि - छीनि कै खिलात बीन - बीन के रे!

मान करि, करै मनुहार गोप संग सो।

जीव ज्यों अनंग - रंग पिंजल मलत अंग,

लोटत त्यों बृज - रज लाडल्यौ अनंग सो।।१०६।।

देख सुत! अंतर के लोचन उघारि देखु

चोर - जार शिरोमणि कैसे गावे गीत रे।

ऊखल सों बँध्यौ भय भयन को भीत कैस्यौ,

नाचै फनि - फनन पै नट सो अभीत रे।।

देखी सुनी नाँहि ऐसी मोहनी या मोहना की

करति कुनीतिन सुनीतिहुँ स्व - रीत रे।

जासों लेय नाहीं, कहे 'मेर्‌यौ नवनीत लै रे!'

लेय, कहे 'मेर्‌यौ लेय गयो नवनीत रे'।।१०७।।

लाग्यौ बाँक्यौ मोर पाँख, मस्तक मुकुट बाँके,

मदभरी बाँकी चितवनि गिरिधारी की।

बाँके कर - कंजनि मैं, बाँके अध़रानि लागी,

कैसी बाँकी रागिनी या वंश - सुकुमारी की।।

बाँकी कटि करि, बाँके चरन चरन धरि,
लट्यौ बाँके लकुट ज्यों कलिका कल्हारी की।
एक बेरि नैंकु बसि जाय नैना, काढ़ि देति
सार्‌यौ बाँक्यौपन छवि बाँकुरी बिहारी की।।१०८।।

सवैया

मोहित इंद्र, भ्रम्यौ अज, विस्मित शंभु या ब्रह्म कि ब्रह्म कौ धोखा।
झांकत वेद - पुरान, न ध्यान मैं आत या कैसोक झांकी - झरोखा।।
चार्‌यौ नहि अनमानि पै, मानि पै मान कौ एक न लेखा न जोखा।
सूकर - मोहनि रूप कौ धारक, देखु अहीर - किसोर अनोखा।।१०९।।

नाथ अनंत ब्रह्मांडन कौ श्रुति नेति कौ नाम दै पिंड छुरावैं।
काल के गाल सों अर्भक खींचि सो काल को एक सों सौ थमवावै।।
खात सभां महुं गारि हँसै, रथ हांकि रह्यौ, रनछोर कहावै।
चेतन होत अचेत, अचेतन चेतन, बाँसुरि ऐसि बजावै।।११०।।

झूम उठे मुनि देखि दसों दिसि ज्यों हरि लीलन - झारि पसारी।
बीन धरी रही भूमि, बजी उठि तारी बिरागि के राग के न्यारी।।
लै मुनिनाथ ध्रु - हाथ स्वहाथन, नाचन लागे बजाइकै तारी।
नारद देखि लग्यौ विधि की बिखरी हरि - पादोहकी महि झारी।।१११।।

पुत्र! जो दीख रह्यौ कहुँ काह, कह्यौ नहिं जावै, रह्यौ नहिं जावै।
केति कहूँ रसना लै अनंत की, अंतक अंत लौं अंत न आवै।।
याचना याहि कर्‌यौं हरि सो, मोहिं दीख्यौ अदेख्यौ तोहिं दिखरावै।
जाँहि तू देन चल्यौ बलि आपनि रे! बलिहारि उन्हींन कूँ पावै।।११२।।

दोहा

लै कर महुँ कर, हिय लगा, भावुक भये मुनीस।
मानहुँ दो लिपटीं लता, घड़ी शिला शिल्पीस।।११३।।

कुंडली

पुलक - सलिल ध्रुव न्हा उठ्यो, मुनिनायक नहलात।
हिय - हिय की संवाद लिपि, हिय बिनु का पै आत।।
हिय बिनु का पै आत, हीय की हियहिं बतावै।
हिय - भाषा के बोल, हियहि समुझै समुझावै।
हिय सम्मुख हिय देखि, बिचौला बनै मूढ़ सो।
हिय बूड़्यौ हिय बूड़ि, अहियनहिं रहस गूढ़ सो।।११४।।

दोहा

प्रेम - पंथ के चक्र कौ, अद्‌भुत गणित विशेष।
जुगन - जुगन पल - पल जुरे, शेष घटत नहिं लेश।।११५।।
कब - किमि गुरु - सिष भे पृथक, ले अप्पृथक लगाव।
जो जानै कहि पात नहिं, पुनि अजान किस भाव।।११६।।

सोरठा

बार - बार दुलराय, नख - सिख सों निरखहिं ध्रुवहिं।
पुनि बोले हुलसाय, बीन धारि मुनि स्वस्थ - चित।।११७।।

कवित्त : नारद उवाच

अंबर के तारे एक बेरि गिनैं जाएँ चहुँ,
गिनैं जाएँ काल्हि पै न तीरथ या ब्रज के।
आनँद अनन्दित अलिंद या के आय होय,
मुक्ति मुक्त होय अंग लाय याकी रज के।।
दंभिन के याकी धूर होंहिंगे गरूर धूर,
भाल ह्यांहीं नवैंगे सुरेस - शंभु - अज के।
हरि की प्रियतमा गुपुत - भू या देवन की,
सिद्धि को गणेश आज पूज तू उगज के।।११८।।

कुंडली

मुनि गमनोत्सुक जानिकै, चरन धर्‌यो ध्रुव सीस।
दे असीस फिरि - फिरि लखत, बरबस चले मुनीस।।
बरबस चले मुनीस, नृपहिं दे वणिक स्वनिधि ज्यों।
वत्स तुरत कौ त्यागि, नयन ढ़रकाति सुरभि ज्यों।।
जनि - पोषी - सिंगारि, धरैं धी सिविका माता।
माया - मोहित जीव, विवस परलोकहिं जाता।।।११८।।

सोरठा

सकल सुसात्त्विक मोह, जो पै इतन्यौ अति दुसह।
रजस - तमस मद - कोह, हिय - हुलास किमि नहिं हरै।।।१२०।।

सवैया

मन ही मन में मुनि जात विचारत 'आयु कहा, प्रण ठान्यौ कहा।
छत्रि शमित्र अमित्रन के सुने छत्रिज मित्र या मींजि रहा।।
हरि लौं हरि - हेतु ही धाय हरावल, आंचल या हरिहूँ कौ गहा।
अब जानि गयो विधि सों विधि कौन पै छत्रिन छत्रप छत्र लहा।।।१२१।।

कवित्त

जान्यौ हरि - भजन पै कोऊ प्रतिबंध नाँहि,
काहू की बपौती नाँहि हरि के भजन पै।
फबै हरि भजन सकल जुग, सारे ठौर,
सकल बयन - विधि - कारन - बरन पै।।
बीज हरि - कृपा हरिकृपा - कल्पपादप कौ,
हरि - पद - खानि खुदै हरि के करन पै।
जान्यौं ना हरित हरिजन हरि - हरिता कि
होत हरि - हरिता हरित हरिजन पै।।१२२।।

छप्पय

कारुणीक चित संत, स्वयं मृदु नव - नवनी से।
सिसु पायो आसीस, सत्य सात्त्विक जननी से।।
लक्ष्य सुद्ध, प्रण सुद्ध, विसुद्ध सुदीप्त भक्ति - पथ।
षट - रिपु भये अजात, मिल्यौ पुनि सिद्धि मंत्र रथ।।
सुपथ - प्रदर्शक हरि - कृपा, परम - सिद्ध जेहिं मग मिलहिं।
सिधि कि संक, सोइ साध्य बनि, साधक हित साधन करहिं।।१२३।।

इच्छागति मुनि जदपि, लग्यौ वैकुंठ दूरि पर।
ध्रुव हित लाग्यौ करन, पुकार श्रीश सों मुनिवर।।
'मम हिय तव हिय एक, वत्स! जनि मान्यौ द्वै करि।'
गूँजी नभ हरि - गिरा, लई दिसि - दिसि आंचल भरि।।
ब्रह्मलोक नारद गये, मन निसंक प्रभुदित हृदय।
जमुन - पुलिन दिसि ध्रुव चल्यौ, अलि प्रभात ज्यों नल - निलय।।१२४।।

कवित्त : ध्रुव मधुवन की ओर

दूर ही ते आत्यो ध्रुव देखि बनदेवी बोली,
"देव! भाग जाग्यौ देख्यौ प्यारे मधुवन को।
बालारुण गगन ते तपन तपान आत,"
कंज बोल्यौ "अरुन कि त्यागतो गगन को।।"
मालती पुकारी "बाल चंद्र भालचंद्र कौ या"
टींट फाट्यौ "चंद्र कहूँ त्यागे त्रिनयन को।"
गेंदा हँस्यौ, "लागे सनादिक मैं कोउ एक,
आवत हमार्‌यौ वन पावन करन को"।।१२५।।
जूही कही "फिरें सनकादि दिव्य - लोकन मैं,
मार त्रिपुरारि - कृपा पायो बालाकार या।"
कुंद नाट्यौ "ढंग ना अनंग के, जो देख्यौ मुनि
पारावर - वट सोई रूप - पारावार या"।।

भरी सांस वट ''मारकंडे के से कांके भाग,

लागत वसंत पारिजात कौ लिलार या।''

''पायो मंत्रराज देवरिषि - शिष्य दीक्षित रे!''

शंका हरि वृंदा ''मनु - कुल कौ कुमार या''।।१२६।।

''वाही मनु विश्व के सम्राट जो प्रथम रहे,

मनुज मनुज जौन मनु सों कहावते।

सासन निजानुभव भव - अनुसासन को

दई निज स्मृति सों मनुस्मृति सु - भावते।।

करि घोर - तप वन माँहि सतरूपा संग,

माँग्यो सुत रूप हरि त्रिभुवन - राव ते।

वाहि मनु - पुत्र के सुपुत्र ध्रुवदेव आलि!

पाहुन ह्वै वर ते हमारे वन आवते''।।१२७।।

वृंदा के वचन सुनि लता - तरु - खग - मृग,

दिसि - दिसि भरीं मोद मंजु मधुवन की।

तरुन पै फल रितु - रितु के तरुन फलै,

डार्‍यौ डेरयौ डारि - डारि सुरभि लतन की।।

तज्यौ खग - मृगन स्वभाव खग - मृगन को,

दर्स पूर्व ऊगी छांव तल दरपन की।

जानि बड़े भाग, प्रिय पाहुन को आगमनु

आँखि बिछीं पावरी ह्वै कानन सदन की।।१२८।।

दिनोंदिन सीतल तरनि - तेज होन लाग्यौ

यामिनी भरन लाग्यौ चंद्र चारु चांदिनी।

संझा ही सों उगन गगन लागे सारे तारे,

खिले पद्‌म - सद्‌म खिलीं पद्‌मिनी उन्मादिनी।।

दादुरि बिठाई फन - शिखनि शिखनि चढ़ि

'दीखै आलि!' पूछैं उत्कंठित भुजंगिनी।

ज्ञान कौ गुमान, मान मखकौ दुरायौ मुख
देखि आर्त बालक की आरति आल्हादिनी ।।१२६ ।।

छप्पय : ध्रुव मधुवन में

ध्रुव को आत्यौ देखि कलिन्दी लागी उछरन।
पितु - कुल - बल्लरि - कली खिली दुहिता - हिय - आंगन।।
लहरनि बारिन झांकि लहरि लौं लहरन लागी।
रखि पिय - कुल - मरजाद पौरि करि पार न भागी।।
दिखी ध्रुवहिं ज्यों अर्कजा, हर्षित - मन हर्षित - मना।
धरा - धूरि लोट्यौ तुरत, बार - बार करि वंदना।।१३०।।
नीली - नीली लहर ध्रुवहिं मन लगीं लहरतीं।
जनु जग - कल्मष राशि पुण्य - पथ पथिका करतीं।।
या हरि - भजन सुरेख कंठ - सितिकंठ लहकतीं।
दुर्मति दुर्गति करति कालि मद - मत्त विचरतीं।।
नीलोत्पल कलिकान रस, नवल नीरधार - कर कढ्यौ।
भर्‌यौ नील - मणि नांद महुँ, नीलांबर छलनी छन्यौ।।१३१।।
कै हरि की छवि श्याम भरी हरि - हिय की करुणा।
जग हित जगती बहति, तरंगिणि बनिकै तरुणा।।
रमा - चुनर लहराति लहर मिष सिसुहिं निरखिकै।
धायो ध्रुव भरि नीर लोचननि, तीर लहकिकै।।
करि प्रणाम, जल लोचननि - लगा, आचमन तीन करि।
बैठि गयो जल कंठ लगि - जहँ आवत, तहँ ध्यान धरि।।१३२।।

रज उबटन करि ऊर्मि करावन मज्जन लागीं।
मन की ग्लानि समेत श्रांति सब तन की भागीं।।
खुरचि खरोंचनि, भरीं बिवाई, रह्यौ न व्रण तन।
भये धुमैले केश कजल ज्यों पार्‌यौ कंचन।।
सलिल सूर्य कौ देत महुँ, ध्रुव जान्यौ जमुना - मरम।
भगिनि पितामह पूज्य की, पितामही या पूज्य मम।।१३३।।

किये पुनः अभिनमन सुमन सों सुमन भेंट करि।
निरखन लाग्यौ मौन नीर - छवि नयन नीर भरि।।
सोचन लाग्यौ पितामही यदि होती वा दिन।
पितु को मौन, विमातु क्रोश किमि लात्यौ या दिन।।
चिंघारति न मतंगिनी, जब सिंहनी दहारती।
भीत हिरनि करती नखिनि, सुरभि हुमकि फटकारती।।१३४।।
पुनि मन ही मन स्वयं ढ़रकत्यौ धीरज धार्‌यौ।
हारत मनहिं विवेक खड्ग दै क्षोम विदार्‌यौ।
वा पितामही गई सौंपि या पितामही - कर।
लगत वाहि संकेत, बुलायौ या आपुन घर।।
परसि - परसि पुनि - पुनि सलिल, विविध भाँति करि - करि नमन।
फेर - फेर फिरि - फिरि लखत, चल्यौ थामि मन, ढोय तन।।१३५।।
विचरन लाग्यौ विपिन, धारि मन श्रीगुरु - चरननि।
झुका अंब प्रति माथ, कियो पुनि गनपति सुमरनि।।
टील्यौ एक निहारि, बुहारि, छिरकि जल - पावन।
इक नीच्यौ, इक रच्यौ रेणुका - मेरु सिँहासन।।
राचन को हरि सुमन - छवि, चल्यौ लेन पल्लव - सुमन।
भीतिन प्रकटावन लग्यौ, बाल - परिच्छा हेतु बन।।१३६।।

सवैया

इत झुंड के झुंड वितुंड फिरैं, जे घुमाइ के सुंड पलास पछारत।
गिरि - गव्हर ते दिसि - जाल कँपावत, केसरि कोप भर्‌यौ उत आवत।।
बिल ते विषधारि चले फुफकारि, ज्यों काल स्वपाश खुल्यौ फटकारत।
मृत मुंडनि चंगनि प्रेत - पिसाचिनि रागनि द्यौस भयावनि गावत।।१३७।।

सकुच्यौ इक बेर तो दृश्य अदेखे से देखिकै बालक कौ हियरौ।
बिहँस्यौ पुनि शंभु कृपाकर कौ परिवार पधारि गयो सिगरौ।।
गजआनन वंदन है, अभिवंदन अंब - सुवाहन रे! तुम्हरौ।
भुजगेस विभूषन के हिय - भूषन! आसन आ सिसु - सीस करौ।।१३८।।

दसहूँ दिसि ऑखि उघारि लख्यौ, झपन्यौ जनु भूलि गई अँखिया।
कटि टेक भयो गजराज बिराज, मृगी - मृगराज भये तकिया।।
मनि भाल की सम्मुख डालिकै सीस कौ छत्र समान तन्यौ फनिया।
जनु बैर बिहायकै जाति - गती ढिग योगिकै जातिहिं भूल्यौ हिया।।१३६।।

ध्रुव - टीले पै टीलों लौं आय लगीं पवमान के यान चढ़ीं कलियाँ।
पुनि पौन बिछौन्यौ सो दीन्हौ बिछा, भरि लास्य लता भईं चाँवरियाँ।।
पिक कूँकी ज्यों हूँकिकै केकि उठी, दई छेरि पपीहन रागनियाँ।
बन जान्यौ रमेस कुमार ही आयो नरेस - कुमार की लौ तनियां।।१४०।।

कवित्त : ध्रुव साधनारंभ

[illegible] सुकोमल तमाल - पात,
पीतपट मालती कौ कामुक किनरिया।
कुंद कौ जनेऊ मुचुकुंद कौ दुकूल डार्‌यौ,
कूल - कूल डारीं भृंगवल्लभ की कलियां।।
मल्लिका के कुंडल पै जूही कौ किरीट कियौ,
जड़ीं बीच - बीच मंजु मंजुला की मनियां।
केतकी सों तिलक, बंधूक सो अधर राचे,
कीन्हीं नीली - नलिनी सों रस भरी अँखिया।।१४१।।

नकुल सों संख, चक्र सोन - सतपत्रक सों,
गदा पारिजातक सों, कमल कमल सों।
अतसी प्रसून कीन्हौं भूसर - चरन वक्ष,
जपा पुष्प पायो निज ठौर पाद - तल सों।।
कौस्तुभ सजाई धरि सूरजमुखी पै बेर,
कीन्हें बहु भूषन श्री - मंजरीन दल सों।
बैठे हरि सून दुरि, नंदन दुराय किंधौं,
छवि बनी प्रवल्ही सी बालक सरल सों।।१४२।।

दोहा

केश - भौंह - बरुनी - पलक - चिबुक - त्रिवलि - अँगुलीय।
रचि सुभाव करि भावना, महि हिय - छवि कमनीय।।१४३।।

सोरठा

छिरक्यौ जमुना नीर, सुमन सुजीवन - प्रद चतुर।
लग्यौ कि जन की पीर, जानि द्रवित हरि ह्वै उठे।।१४४।।
मंगल प्रद मंजीठ, चढ़ा भाव सों फूल - फल।
वंदन करि हरि - पीठ, मंत्र जाप रत ध्रुव भयो।।१४५।।
तनु तनु इक कोपीन, करि - करि त्रिसमय स्नान नित।
करत्यौ संचित छीन, लग्यौ पीन पुण्यन करन।।१४६।।

सवैया

देखत - देखत सून - गुविन्द कौ रूप अनूप समाधि सी लागी।
शोभा - सुधा - सरि रोम - प्रपातन सों झरि नैन पयोधिन भागी।।
भाव वसंत चढ्यौ नव - यौवन, भावना प्रीति प्रतीतिन पागी।
होत हि लोक कौ स्वल्प सो भान, लगी धधकान हिया बिरहागी।।१४७।।

मानस संभु के जो छवि राजति सो छवि आइ दिखाइय जू।
वेद - निनादनि ब्रह्म जु बाजति सो छवि आइ दिखाइय जू।।
राग ह्वै नारद बीन जु छाजाति सो छवि आइ दिखाइय जू।
जो जग - जीवन गातन गाजति सो छवि आइ दिखाइय जू।।१४८।।

जो पद - पंकज श्री - कर पंकज सेवित सो मम माथ धर्यो जू।
जो पद पद्म खगेश सु - शीश सुशोभित सो मम माथ धर्यो जू।।
जासों बिरागिन के हिय रागिनि रंजित सो मम माथ धर्यो जू।
पात्र कृपा के करात हठात जो स्वार्पित सो मम माथ धर्यो जू।।१४९।।

चक्र उठा जिनमें मधु - कैटभ शीश हरे सोइ शीश धर्‌यो जू।
मंदर देखत ही जिनमें जग कष्ट टरे सोइ शीश धर्‌यो जू।।
लै जिनमें रस - कुंभ अभै सुर - व्यूह करे सोइ शीश धर्‌यो जू।
भक्त जिन्हें छिति छत्र विचारि सुमोद भरे सोइ शीश धर्‌यो जू।।१५०।।

हे जगदीश! अहीश सुसेज के शायि! विलोचन नैंकु उघारो।
रूप स्वरूप कौ भाव अनूप कौ शौरि! स्वयंभू स्वमेव उभारो।।
ज्यों निज जाय कौ जाए कै पाल्यौ तो काल के गाल मैं घाल न मारो।
व्योम - विभेस सों भूमि - प्रजेस सों मां बिनु बाल कि जाय सम्हारो।।१५१।।

हे हरि! हो कितु, 'हो सब ठौर,' यही हम पै गुरु - मातु उचारो।
आपुन्यौ आपुहिं दीजिय दर्स, पर्‌यो बन बालक दीन बिचारो।।
कौन को, कौन से दोष पै, कौन से द्यौस के कौन निमेष विडारो।
ध्यान मैं धारिकै सोई स्वभाव, स्वकारन कानन मैं पगु धारो।।१५२।।

नीति कहूँ कि अनीति कहूँ, जग - जीव स्वभाव यही मुँहजारो।
देखन जोग न जाकर मूँ, तरु चाटिकै ताके, तकैं तव द्वारो।।
रीति निभा सोइ आयो हौं नाथ! न माथ सों हाथ कौ कीजे उतारो।
पैर परे ज्यों लगाय सदा हिय, लाइय त्यों हिय बारेक बारो।।१५३।।

मम जेठ के आप मँदारक हो, मम माघ के आप अँगारक हो।
मम सावन - छत्रक आप हरि! मम काल के आप नियामक हो।।
मम देह के आप दुकूल न केवल रल्लक - तोषक - पिष्टक हो।
मम - मातु - पिता - गुरु - स्वामि - सखा - परिपालक हो परिचालक हो।१५४।।

लघु बाल बिलोकि जू बाँचिय तौ, बस मो नहिं, पै जस तौ कितना।
मरि डार्‌यौ मरैगी पिपीलिका है, पर सोच्यो कहैग्यौ कहा जग ना।।
यहु बार्‌यौ सो बार्‌यौ रमेस तिहारों , वा नरेस कौ बार्‌यौ तौ पौर हना।
सिर स्वामि झुक्यौ या, कर्‌यौ पदपीठ की ईंट कि क्रीट करो अपना।।१५५।।

कुंडली

हिय हटकनि, बिचलीं हिचक - पै अधरनि की पौरि।
पार न कर पाई गिरा, सुमिरत श्रीपति - शौरि।।
सुमिरत श्रीपति - शौरि, लगी कूँकति नारायण।
लगी रुदन पुनि करन, 'देव! शतदल - दल - लोचन'।।
दिसनि कँपावन लग्यौ पुनः विरही कौ क्रंदन।
हरि - दरसन हठ 'रामरंग' बनि गई निवेदन।।१५६।।

हीय - गिरा हिचकिन कही, 'जब लगि देहुँ न दर्श।
स्वजन जीवनाधार हित, निज लीला उत्कर्ष।।
निज लीला उत्कर्ष, नाथ! कछु तौ दिखरावहुँ।
जब लगि छिपन्यौ चहौ, - छिपहुँ, छवि नाँहि छिपावहूँ।।
जान्यौ तव हिय नाँहि मोहि मान्यौ प्रिय, प्रियतम।
मम हठ मिल्यौ न दर्श मुँदें ये याँहि दृगाधम।।१५७।।

दोहा : भगवद् लीला - रूप दर्शन

ध्रुव सम्मुख उभरन लगे, सहसा दृश्य अनेक।
भक्ति मुदित लखि बाल - हठ, दिखरावती सविवेक।।१५८।।

कवित्त : मत्स्य रूप दर्शन

फाटैं श्रुति - पट ऐस्यौ रोर घनघोर सुन्यौं,
ताड़न लौं बीचि तड़ितान लौं तड़कतीं।
क्षितिज - क्षितिज चीरि अक्षयन क्षय करि,
देखी सुनी नाहिं बाढें बाढ़ों पै उमड़तीं।।
गयो दिसि - ज्ञान, निरमान ध्यान माँहि रह्यौ,
देख्यौ ध्रुव टील्यौ छोरि, छिपी कहीं धरतीं।
ऐतेक में देखी आती दूरि ते बैसारिणी सी,
तारिणी सजाए सृंग कलिका लौं खिलती।।१५९।।

आई कछु पास दादा दिखे सप्त - ऋषिन मैं,

धरनि पै लोटि ध्रुव सादर की वंदना।

छन माँहि मीन वा मनाक सी मैनाक भई,

लाग्यौ जलपरी परी पसरी पलँगना।।

सहसा ही जाने आनि कहांते उठाइ वेद,

लोप भयो शंखासुर नाम बोलि अपना।

खूँदि तलातल लाये दनुज पकरि केस,

सीस काटि, काटि दई वेदन की वेदना।।१६०।।

देख्यौ पुनि मोद कौ प्रमोद ज्यों विनोद करे

पावस पयोद पयोनिधि मधि उछरे।

वार - पार हीन वा अपार पारावार - धार,

पाल - पतवार बिनु तरि तर बिचरे।।

पालैं - प्रलैकाल के अकाल मैं सुकाल - बीज,

उजरे - गरे मैं गेरे गरे - भरे गजरे।

अंतक सी अंत की अनंत जल - राशि पीन

लहर - लहर मीन रूपी हरि लहरे।।१६१।।

दोहा

कृषिबल - बाला खेलती, ज्यों ईखन की खेति।

तरति - दुरति - उछरति - फिरति, हरि छवि सोइ सुख देति।।१६२।।

महि के मंगलसूत्र से, लगत महोदधि मीन।

ध्रुव नतमस्तक जोरि कर, वंदन बहु विधि कीन।।१६३।।

कवित्त : वाराह रूप दर्शन

देख्यौ पुनि पारावार में ते अंडाकार धरा

धार, एक कोलाकार महाकार कढ़्यौ।

देखत ही एक महाकाय धायो कुंजर सा,
संगर भयंकर बिलोक्यौ पुनि छिड़त्यौ ।।
धरी शेष - सीसासन धरनि बँधाय धीर
पलटि पछार्‌यौ, गिर्‌यौ सोनित उगरत्यौ ।
लागे वर - राह रूपी श्रीवराह रूपी हरि,
नायो सीस ध्रुव, जानि सूर नव उगत्यौ ।।१६४ ।।

कमठ रूप - समुद्र मंथन

देव - दनु राशि तीर सिंधु के निहारी ठाड़ी,
पाँय किमि अमि, कितु मथनी मथन को ।
देख्यौ तभी मंदर लै अंक खगराज - लंक,
हरि मुसुकात आत चीरत गगन को ।।
धर्‌यौ वक्ष वारिधि के, अतल धसन लाग्यौ
कटि दे टिकायो धारि कमठ सुतन को ।
नेति लौं लपेट्‌यौ हर - हिय - हार वासुकिहुँ,
मंथन कौ दीन्हौं बल देव - दनुजन को ।।१६५ ।।

निकरैं रतन पै रतन एक - एक करि,
बाँटि - बाँटि जुटैं जोट पलटि मथन को ।
दिख्यौ धनवंतरि करनि रस - कलश ज्यों,
दौरि परे सारे गर्त डारि संगठन को ।।
भाज्यो ज्यों जयंत रस लेइ नैकषेय भाजे,
पर्‌यौ पर्व भालन - त्रिसूल - सरन को ।
सांत करि मुनिन बिठाय पै विश्वास - हीने,
खोजि नाहीं पाये समाधान के जतन को ।।१६६ ।।

दोहा : मोहिनी रूप दर्शन

दिखी दूरि ते आवती, एक सुंदरी नारि।
लखी - सुनी अब लागि नहिं, जाकी लघु अनुहारि।।१६७।।

सवैया

कल डोलनि मत मतंगिनि सी, ठवनी मृगराज - विलासिनि सी।
अवलोकनि मंजु कुरंगिनि सी, भुज - चालनि बेल सुमालिनि सी।।
तनु ग्रीव, कलानिधि पेखि कुमोदिनि मोदमयी की मृणालिनि सी।
तन वर्ण सुवर्ण विवर्ण करे, गिनि चर्ण धरैं नव - कामिनि सी।।१६८।।

कटि वेणि प्रसून - कलाप गुँथी, नखतावलि - रंजित यामिनि सी।
अलकैं उरि भाल - कपोल परैं, तरु चंदन झूमति व्यालिनि सी।।
मणि - रत्न विभूषित भूषण अंगनि रंगनि खेलति दामिनि सी।
उपमा - उपमान सबै अपनी, निज ओज लगै जग - स्वामिनि सी।।१६९।।

लखि घाघरि - घूमि प्रभा गई घूमि, विभा गई झूमि निहारि कै चूनर।
नव अंगनि आँगि - कसाव विलोकिकै मेनका आइ परी धरती पर।।
रहि विस्मित देखि सिँगार रती, सचि सोचै 'बनाय ना सौति पुरन्दर।
तब गौरि - गिरा मुँह फेरि हँसी, भइ मोहनि मोहिनि - वेष निछावर।।१७०।।

अनचीन्हि सी गंध भरे पट - झीनन, पौन उराति सम्हारति सी।
कर - कंजनि कंदुक व्योम उछारति, झेलति, भूमि टिपावति सी।।
गिरि भाजति भाजि उठावति, केलि - कलाप किलोल मचावति सी।
श्रम -सीकर बेंदि बहै, लखि आरसि ठौरि पै मोरि कै लावति सी।।१७१।।

दनु - देव बिलोचन फारि लखैं, लखि देहिं निमेषन गारि पै गारी।
टुक आँखिन आँखि परैं उरती, मन पाँखि उरावति चेतना सारी।।
लखि लोहित होंठन, लंपट लौं कहैं 'या रस झारि, न वा रस झारी'।
मुरि ग्रीवहिं मोरि तकै जेंहि नैंकु, दिखै सो निचोरि निचोलि ज्यों डारी।।१७२।।

बलि बोल्यौ 'पताल की दानवि ना,' सुरराज कह्यौ 'नहिं नाक नटी।'
'नहिं किन्नरी - विद्याधरी - यखिनी' अलकाधिप की कहैं आँखि फटी।।
विधि सोचैं 'रची नहिं, ऐसि कि कंक के, नाँहि खटै घर धूरजटी'।
सब बोले बिचारि कि 'या दनु - देवन के बड़ भागन ते प्रकटी'।।१७३।।

''यह कोउ की मीत - अमीत नहीं, बरतैगि अनीति न नीतिमती।
यहि सौंपि पियूष कौ दीजिय कुंभ, विभाजन की करिकै बिनती''।।
बलि - इंद्र लियो घट, जाइ कथा कहि, दै कहि कीजिय जू सुगती।
दृग - हाथ नचाय हटाय हटी, हठ ठानैं दउ, पै रही नटती।।१७४।।

हटती - हटती जनु हारि गई, घट लीन्हों दिखाइ बिना मरजी।
धर्‌यौ सीस पै दै बल बाँहनि कौ, कर-कंकणि कोनिन लागि बजी।।
कटि कंकणिका कलवारि सी हाँसि, प्रलुब्ध समाज कियो निलजी।
पद - चालनि झांझनि - झालि बच्यौ कछु झोल सो झोलिहिं डारि भजी।।१७५।।

पुनि ठाड़ी भई दनु - देवन मैं, जनु हारी, बिराजि सिंलासन पै।
घट अंक भर्‌यो, भर्‌यौ सांस सम्हारति, दीठि जमाइ स्वोरोजन पै।।
कहि 'भीरु निहारिकै डारिय दीठि तौ भारन लौं इन भारन पै।
बल - बुद्धि-न स्वल्प हौं नारि- अनारि, दो जान, धरौं सिर पाँयन पै'।।१७६।।

महि लोटि कै दानव - देव कहें 'हम पै धरि पांव जु जाव जु जान्यौ।
यहि जीवन हाथ तिहारे दियो, इन जीवन कौ नहिं और ठिकान्यौ'।।
मुसकावत ध्रू रस लेइकै, ठट्ठ ठगीन कौ श्रीश पै कैस्यौ ठगान्यौ।
बाल ठठाइ उठ्‌यौ जब मोहिनि बोल्यौ, 'उठ्‌यौ, हम मान्यौ जु मान्यौ'।।१७७।।

बोलैं पुनः 'हम जाहिं - जहां - जित जाइकै देंय, पियैं उतन्यौ ही।
कोउ उठै - उकसै नहिं थान सों, चाहे विलंब लगै कितन्यौ ही।।
धारिकै मौन, लगाइकै पंगत, बैठे समाज इहां जितन्यौ ही।
रारि जू देखितौ देखिय सिंधु, हौं कूदिहौं अंक भरे बसन्यौ ही'।।१७८।।

सुनि मानिनि की, मन मानिकै, मान बिसारि गुमानिन सारी करी।
दनु - देव रखै सिर पांव भजे, सजि पंक्ति निमेषन मैं सिगरी।।

लचकाइकै लंक लिये कलसी, दनु मोहि, छकावत देव हरी।
सरक्यौ सुर - पंगति राहु, पियो रस, तौ रवि - चंद पुकारि करी।।१७६।।

कवित्त

देखि राहु - कपट कपट - वेष त्याग्यौ हरि,
साटिका पितंबर, चुनर भई पटका।
कौस्तुभ उरोज, बाँह चारु चारि भुज भई,
देव - घिर्‌यौ इंद्र कियो स्वामी रस - घट का।।
दावा - बड़वा की जागी पुरुखा विलोचननि
देखि राहू छोरिकै दनुज - दल सटका।
केतु होय रुंड गिर्‌यौ, राहू होय मुंड उर्‌यौ,
तर्जनी संकेत चक्र छगुनी ज्यों झटका।।१८०।।

नृसिंह रूप दर्शन

झूमि रह्यौ ध्रुव देखि लीला लीला - नायक की
ऐतेक मैं देख्यौ एक बालक स्ववय कौ।
लाल आँखि वार्‌यौ, लाली लस्यौ खड्ग थामि ठाड्.यौ,
लाल - खंब सम्मुख पै नाम नाहिं भय कौ।।
'हौं ही हरि - हर - अज - वरुण - कुबेर - कंक',
कहै 'ईश अन्य ना, हौं ईश्वर समय कौ'।
बाल बोल्यौ 'हरि ही सनातन त्रिभौन - स्वामी,
काल - कौर प्राणी तौ प्रत्येक लोकालय कौ'।।१८१।।

'जाके भ्रम परि मूढ़! लोक तू बिगारि रह्यौ,
मेर्‌यौ अरि, तेर्‌यौ हरि सुन्यौ सेज शेष की।
पर्‌यौ दिन - रैन रहे मोरे भय मींचे नैन,
देखी छवि कौन, कौन दिन वाके केश की।।
बोलु कितु'? 'कितु नाँहि'? 'खड्ग मैं'? 'या खंब माँहि,
मो मैं, तो मैं अखिल मैं छवि अखिलेश की'।

'लै तौ' कहि खड्ग ज्यों उठायो, खंब फाटि पर्यौ,
गर्ज कढ़ि छवि पूरी मनु ना मृगेश की।।१८२।।

ध्रुव एक बेरि तौ सहमि कै सिमटि गयो,
खंब फाट्यौ, फाटे कि ब्रह्मांड के पटल - तल।
गर्जना कि पारावारन के परिवारन कौ
बढ़ि कै प्राचीरन सौं, प्रलय मचात जल।।
सटा फटकारि धरा धमके नृसिंह ज्योंहि,
तल धस्यौ अतल, बलाहक भे दल - दल।
केसरी गहे क्या करि, अहि क्या खगेस गहे,
गह्यौ ज्यों हरि ने दौरि कनकशिपु खल।।१८३।।

खड्ग खैंचि, सूल तोरि, मोरि कै त्रिसूल फेंक्यौ,
गदा करि चूर, डार्यौ धनुष मरोरिकै।
कीन्ही पद - चोटन विशाल ढ़ाल काल - थाल
वेष देखि भाजे विरुदैत दैत छोरिकै।।
अजिर घसीट बेर - बेर जरजर करि,
जानुन पै डारि बैठे बीच सिंहपौरि के।
बोले, "देखु अस्ताचल - पुर - पौरि रवि - रथ,
उदैगिरि ठाड्यौ है मृगांक मृग जोरिकै।।१८४।।

"पूँछत हौं प्रस्न देत्यौ उत्तर उचित जाव,
दिन है?" "ना" "रात है?" "ना" भू पै?" "ना" "ना" "नभ पर।
"नर हौं" "ना" "पशु हौं" "ना" "अस्त्र या"? "ना" "सस्त्र या" "ना"
पूँच्छौ विधि - वर नरहरि एक - एक कर।।
बोले हरि "बोल अपराधी कौन - कौन को ना
कौन सी अनीतिन न नीति कीन्ही जरजर।
ना - ना करि सबन पै, हां - हां की तू मुद्रा ठोंकी,
अब तेरे होन कौ 'ना', आयो याहि अवसर।।१८५।।

कारागार संतन सों चाकी तू पिसाई नीच,
यज्ञ किये ध्वंस, निरबंस बंस कितने।
पेरे वृद्ध बाल, वारवधु वरवधु कीन्हीं
छोरे कौन पातक, बताये वेद जितने।।
प्यायो विष, गिरि ते गिरायो, डसवायो अहि,
जायो लगि जान्यौ निज जायो नाँहि जिसने।
जीवन के जोग्यौ तू जदपि ना जनम सों ही,
मृत्यु कौ मुहूर्त पै निकार्‌यौ आज अज ने।।१८६।।

पूँछें, नैन मूँदे पर्‌यौ - पर्‌यौ मनुजाद सुनै,
जीव जकर्‌यौ ज्यों पास, पास जीवितेश के।
एक - एक करि एक - एक अनाचार घूम्यौ
चित्रपट जैस्यो लोचननि दनुजेस के।।
बोल्यौ, दीप बुझत्यौ ज्यों भड़कै तड़ित जैस्यौ,
याद करि साप सनकादिक पौरेस के।
''जान्यौ भ्रात - घाती कोल क्षीर सिंधुवार्‌यौ, करु
करन्यौ जो'' सुनि, नख निकर्‌ये रमेस के।।१८७।।

फार्‌यौ शुक्रदत्त वर्म वारिद लौं वायुवेग,
चीरि डार्‌यौ चर्म चली लोहित तरंगिणी।
रक्षण को रक्ष मारी टँगरी, धसाई जानु,
भुज भरीं भुज भुजगेश ज्यों भुजंगिनी।।
डोलति विडोलति मथानी ज्यों दहेड़ी मध्य,
मथन त्यों लागे कोपि पोच - पंचतत्त्विनी।
लागी धरा पूत - द्यौस मलिनी ज्यों पूत होई,
ताकैं सजि पीव पुनि होन हेतु गुर्वणी।।१८८।।

काढ़िकै कलेजा - भेजा हाथरनि मींजि दीन्हौं,
आँत पाग बाँधि , कछु कसि लीं कमर में।

रँग्यौ पिंड चंडी कौ ज्यों पर्व रोरि - सेंदुर ते,

लागे लोहु न्हाये नरहरि त्यों बगर में।।

फेरैं कनपटिन लौं रसना निकारि लांबी,

रगरि - रगरि डाढ़ी - डाढ़न निकर में।

आठों मूँदि विधि, तीनों मूँदि त्रिपुरारि काँपै,

व्यापी घनघोर घुरघुरी चराचर में।।१८६।।

सवैया

श्री करि साहस ज्यों प्रहलाद बढ़ायो, बढ़ा कर त्यों हरि थाम्यौ।
हाथ फिराइ कै माथ, लगाय लियो हिय हीय को टूक बखान्यौ।।
कोप निमेष में लोप भयो, रिसहूँ रस - रूप दृगान रिसान्यौ।
रुद्ध करी हिचकीन गिरा, हरि - होंठन शब्द न एकहुँ आन्यौ।।१६०।।

सोरठा

बोले जगदाधार, 'हौं अपराधी तव तनय।
भइ आवत अति बार, विपद् अमित तोपै परीं'।।१६१।।
लखि प्रहलाद - दुलार, उठी हूक सी ध्रुव - हृदय।
कब मोहिं याहि प्रकार, लेहिं उछंग उमंग भरि।।१६२।।

श्री वामन रूप दर्शन

लगीं भिजोवन गाल, नैनन झरतीं निर्झरी।
सम्मुख देख्यौ बाल, अजिन धारि, कोपीन कटि।।१६३।।

सवैया

ऊन कोपीन कसी मृगछाल पै, मूंज की मेखला मंजु सँवारे।
छत्र सुमाथ, कमंडलु हाथ, जनेउ लसै भुजमूल किनारे।।
ऊर्ध्व त्रिपुंड, लटूरे परैं निकरैं कनटोपि ते घूँघरवारे।
रूप ज्यों अंतिम यामिनी - याम छटा नभ भानु भरे भिनुसारे।।१६४।।

लोचन अंचल चंचल लोल कलोलनि के सर से मतवारे।
लागहिं आँजि अँजोरनि आँजन भृंग कुमोदिनी अंक बिठारे।।
आनन की मुसकानि, चितौनि - चुनौति को चेतन चित्त सम्हारे।
धर्म उधारन धर्म - धनी धर्मध्वज सों बलिद्वार पधारे।।१६५।।

छत्रक - दंड वियोग निसा गइ, इंद्र नवीन विहान निहार्‌यौ।
पावक देख्‌यौ या भोज बलात करात जो दानौ, मिल्यौ छुटकार्‌यौ।।
धर्म के स्वांग जो धर्महिं ताँकि अधर्म धर्‌यौ सर सो धनु दार्‌यौ।
वामन ह्वै बलि की मखसाल सनातन श्री हरि ज्यों पग धार्‌यौ।।१६६।।

शाकल प्रस्थ करै समिधा महि, पावक पा धृत - पावस खेती।
झूमत धान्य धुँआ नभ, मंत्र उड़ात ज्यों विघ्न विहंग कुहेती।।
द्वेष के बीज फली बलि बेलि विषैलि सुसंस्कृति की बलि लेती।
देखि, जगत्पति सोचि, 'दराति लै यासों, करौं याको मालव रेती'।।१६७।।

पौर ज्यों पैर पर्‌यौ, प्रहरी लखि रूप अनूप स्वतः पग लागे।
'लागें धरे बटु - वेप खर्‌यौ मख कौ फल' बोलन को कछु भागे।।
भागे नृपेश बली सुनि सादर, शुक्र पुरोहित को करि आगे।
आगे जो देख्यौ तौं देखत ही हिय बोल्यौ, ये पुण्य - पुरातन जागे।।१६८।।

पाँव पखारि लियो चरनामृत, आसन ला बलिराज बिठारे।
पूजन बारहिं बार करैं, निकरैं नहिं बैन परे जनु तारे।।
'कौन जु, कौन लिए अभिलाष, अकारन - कारन आप पधारे'।
नैनन प्रश्न विलोकि प्रसन्न ह्वै बोले रमापति झोलि पसारे।।१६६।।

'कीरति रावरि व्यापि रही दसहूँ दिसि - लोकन तीनन माहीं।
सौरज - धीरज वैभव मैं प्रणपालन मैं तुम सों कोउ नाहीं।।
आवत लाज, कहे नहिं आत, कपर्दक माँगैं धनाधिप पाहीं।
सो महि दीजिय जू डग तीनि मैं ये पग नापि सकैं पल माहीं'।।२००।।

ली जलझारि उठा बलि ने, कवि बोलि उठ्‌यो 'नृप! ना पहिचाना।
ये स्वयमेव नरायन हैं, ऋजु - बाउर वामन तू जेहिं जाना।।

तीनि डगानि मैं तीनहूँ लोकन नापिहैं तोहिं न ठौर - ठिकाना।
मान न, मान सों जाल बिछाइकै डारत व्याध लौं पंछिन दाना'।।२०१।।
देखि रमापति की दिसि बोल्यौ पुरोहित सौं बलि 'श्रीपति जो ये।
श्रीपति संग सुन्यौ! बलि - द्वार के याचकहूँ कहिलाहिंगे तो ये।।
दान सों नाटि स्वमान हनौं, मनमानि सों आवत बाज न सो ये।
आज सो होन दो होनि कहैं अनहोनि जो छोनि, न जानौं हौं को यें'।।२०२।।

दोहा

गुरु इक दृग लखि, फेरि दृग, पुनि बलि लइ जलझारि।
भये त्रिविक्रम रूप, महि - जब लगि परसे वारि।।२०३।।

सवैया

भृगुकच्छ सौं रेवा के तीर सौं सौरि - सरीर दसों दिसि बाढ़न लाग्यौ।
एड़ि के लंक अगारि परी, नगराज को योजनों पंज्यौ पिछार्‌यौ।।
नापि लई ध्रुव सों ध्रुव लौं महि, एक सौं दूसरौ जो पुनि बाढ्‌यौ।
भू - भव - मैं - जन - सत्य - तपो - सुर लोक सौं ब्रह्मपुरी पग काढ्‌यौ।।२०४।।

देखि पदाम्बुज श्रीपति को, कमलासन सों कमलासन भागे।
सीस नवा चतुरानन - आनन सुस्तव मंत्रन - गायन लागे।।
भारति ध्यान लगाय कह्यौ, 'घर बैठेहि भाग प्रजापति! जागे'।
घोय अँगूठ्यौ - नखाग्र कमंडलु भव्य स्वभू प्रभु भावन पागे।।२०५।।

दोहा

गंगहिं जन - जन हेतु जनि, बलि भेज्यौ पाताल।
वामन है वामन कियो, पर - पीड़क प्रतिपाल।।२०६।।
देव - धर्म - संस्कृति सुहित, लखि हरि - प्रीति प्रतीति।
जानि गयो ध्रुव विविध विधि, अनरीतिन प्रति नीति।।२०७।।
शेष बची दिखराइ हरि, प्रखर परशु कर धारि।
सहसबाहु सह बाहुजन, अहंकार निस्तारि।।२०८।।

पुनि क्षत्रिय - कुल विमल - जल, पल्वल नील - कल्हार।
मर्यादा सागर परिधि, कोसलराज - कुमार।।२०६।।

कवित्त : श्री राम रूप दर्शन

राग लखि रागहिं विराग होत, त्याग लखि
त्याग कहै 'बोर्‌यौ हम त्याग के सुनाम को'।
हर्ष लखि होत उतकर्ष - गर्व - ग्रीव नत
देखिकै अमर्ष कंक होत रंक चाम को।।
गुण - गणना में गणितज्ञ होत मुग्ध - जड़,
रूप सों अरूप लागै सांच्यौ नाम काम को।
धाताराम धारे जेते नाम अभिराम - धाम
हारे ले विराम अविराम लखि राम को।।२१०।।

लटी याग - लटन उठात, लुठा लंपटन,
सिला उदै - सैल सी करत पग धूरी दै।
जूझि - जूझि परैं जापै अमित जुझार - जूथ,
ताँहि टूट्यौ शिव - धनु हाजिरी हजूरी दै।।
हँसिकै सिंहासन दै, कानन विहँसि जात,
कोलन की खोलन बजन तप - नूरी दै।
मांझी सों सगाई, सबरी सों पहुनाई पाय,
मारे करै अमर, न जाने कौन मूरी दै।।२११।।

जटा धरि धरे जौन भैया के सुभाल क्रीट,
धारै सो स्वभाल भैया, भैया की लै पांवरी।
जासों पायो पितु न मुखानल, गोलोक यान
गीध सो चढ़ात करि जटन सों चामरी।।
खाल खिंचा कीसन सों जीते दिगपालन की,
सेतु रचे वारिधि की छाती करि सांकरी।

कीटन किरीटी करै, कीट लौं किरीटी करै,
श्वानहूँ को देत न्याय राजनीति नागरी।।२१२।।

अन्य अवतार दर्शन

राम रमा - रमन मैं मन ज्यों रमन लाग्यौ,
ज्ञान लेत सुत सौं ध्रू देखी गर्भ - धारिनी।
कपिल को जानैं वासों पूर्व सनकादि आनैं,
हंस सो बखानै सुनै देव - मुनि - वाहिनी।।
वाणी श्रुति - वृत्त की परीधिन कौ व्यास बनि,
रचत पुराणावलि शब्द - ब्रह्म भामिनी।
सारद करति धन्य, शिवा शिव पाहिं सुनि
नृत्त करै नारद की वीणा सो ह्वै रागिनी।।२१३।।

'ह' ही सुनि छोरि खग, धावै नील - पट धारि,
'रि' के कढ़े काढ्यौ चक्र नक्र सौं मतंगहीं।
नर लै दिखात साधना कौ पथ साधकनि,
रंभा काढ़ि जंघा सौं लजावत अनंगहीं।।
पृथु ह्वै भू धेनु दुहै, अमित बनाइ वत्स,
दिखैं न पदार्थ जो कढ़ै न एक संगहीं।
रुचि सों आकूति सौं प्रकटि, अग्निहोत्र थापि
यज्ञ ह्वै सुपीन करै दीन देव - अंगहीं।।२१४।।

विधि - स्वांस - सृत श्रुति - हृत मधु - कैटभ सों,
देखि, हयशीर्ष होय शीर्ष डार्‌ये काट के।
कुंडलिनी कुंडल बनाय डारे योगिन के,
पीय अनसूया - पय बिनु पट - पाट के।।
असन न,. बसन न, आसा न पिपासा कछु,
दर्श परमोन्मादी - भाव ऋृषभ सम्राट के।

पशु - बलि पशु - बल देखि, देखे दया भरे,
तिलक तथागत अहिंसा के ललाट के।।२१५।।

श्री कृष्ण रूप दर्शन

अंबर लौं देखे अंबरान के अंबार लागे,
घटै ना वितस्ति लौं हस्तीस लट्यौ हांपत्यौ।
करन को बैरी अस्त, उदै हाथ थामेहुँ को
ढाँकि निज बिंब रवि निज लौं प्रकासत्यौ।।
रथी कहैं महारथी, महारथी अतिरथी
जाँहि, सारथी ह्वै सोई देख्यौ रथ हाँकत्यौ।
एक ओर देख्यौ पद धोत्यौ द्विज - दलन के,
देख्यौ मुख फेरि तौ प्रथम पूजा पावत्यौ।।२१६।।

गीता गाइ करत आरोहित व्यामोहित को,
गोधन गा करत विमोहित विभासत्यौ।
बाँसुरी बजात्यौ प्रानी - प्रानी प्रान झूम जात्यौ,
शंख जौ बजात्यौ प्रान पांखी लौं उरावत्यौ।।
अमित - अमित वेष अमित - अमित हेतु,
धारि - धारि महारास कैसेक रचावत्यौ।
घट - घट वासी घट - घट सों निकसि जनु,
घटन लौं घटन - छँटन घिरि नाचत्यौ।।२१७।।

कलियुग के दृश्य

देखी ध्रुव धरा पुनि बीच ऐसे नीचन के
नीची परै नीचता निचाई पै जिन्हन की।
रीती प्रीति - रीति सों अनीति युग - नीति भई
मृत मरजाद हुई तीनहुँ जुगन की।।
नैनन सों लाज गई, वाणी सों मिठास गई,
कुटिल खटास भई स्वामिनी हियन की।

जनता तौ बाढ़ी कलिजुग प्रलै - बाढ़न सी,
दिखै पै न छाँव एक सुजन - स्वजन की।।२१८।।

सदन - सदन दिन - रैन वारवधू नाचैं
हिय - भौन भौंहन भौं - चालन सों हालते।
व्रतन विरत भई वासना के बासन सी
कृत्त कुल - वधुन के कुलिस लौं सालते।।
बालक बिरानन बिरान्यौ होन हेतु देई,
प्याय - प्याय पय नाग आँगनन पालते।
संसृति में कीरति - सुकेत ते उरात तेते,
संस्कृति पै रेती जे - जे जेती - जेती डालते।।२१६।।

घर कौ प्रमुख घर खात, घर भूख्यौ राखि,
आपुहि बनात आपु खात गृहस्वामिनी।
एकु, कौर - कौर हेतु ठोकर कुठौर सहैं,
अपच - अधीर एक लोटत अट्टालिनी।।
एकु रँगि गेरुअन गैंडन लौं खूँदैं गादी,
पियैं गृही - लोहू लै - लै स्वादु चिंता साँपनी।
धर्म कंज लीलन कौ ईश रवि अस्त करै
पंथ - सम्प्रदाय - मज़हबन की यामिनी।।२२०।।

जायन कौ रोत्यौ छोरि, जाया जार - संग जाहिं,
अगनी की साखि झोंकि वासना की आग में।
लोभी - भोगी मारत - प्रताड़त वचन दै जे
असन - बसन को बिठाई वाम - भाग में।।
बेचैं अनुजा को तनुजा को जन्य - मैयाजाये,
जोरि अनमेल जोरि आपने ही राग में।
त्यागि खान्यौ - खेलन्यौ जो बालक मजूरी करैं,
छीनि बापु पीवैं, गावैं भडु.वा ज्यों फाग में।।२२१।।

लदे - फँदे बोरन सों लागें साला जाते बाल,
जानैं भारवाही कोउ पीरित हो भार सों।
मोटी - मोटी रासि भरि, सूखी रोटी पेट भरैं,
मैया - बाप सुनि खोटि 'पोयम' दो प्यार सों।।
गोबर पै वरक से देखि परिधान फूलैं,
सपन रसालन के झूलैं आक - झार सों।
आवैं सहशिक्षा सौं लै भिक्षा मैं कुशिक्षा लाल,
भेजत वृद्धाश्रम निकारि घर - द्वार सों।।२२२।।

दोष शिक्षकान कौ जो देन चहैं देंय किमि,
पाये नाहिं शिक्षा ऋषि - आश्रमन दीन वे।
शिक्षा - हेतु पुस्तक जो नियत पढ़ात वे ही,
जानैं जो बखानैं कहा मनोबल - हीन वे।।
शिक्षक जो करैं गुरुवाई जावैं चाकरी सों,
ढोंय पशु सरिस गृहस्थी - भार पीन वे।
दास कटुवे कौ जौ न काटे तौ कटावै कंठ,
बीच कूप - खाईके बजावैं फूटी बीन वे।।२२३।।

व्यास - बालमीकि की सुभाषा मृत - भाषा भई,
भाषा - भाषा राजभाषा सौतिनि लौं तांकतीं।
रानी ह्वै विदेसी - भाषा कटु - मुसकानि भरि,
गणित - विज्ञान सबै दीमक लौं चाटतीं।।
भौंचक भूगोल नित भूमि नयौ नाम धारै,
राजनीति नदी - नद - सैल फिरैं बांटतीं।
जाहिं इतिहास कहैं झूठ कौ पिटार्‌यौ ऐस्यौ,
गल्प उपन्यासन की लाजि माथ्यौ थामतीं।।२२४।।

सृष्टि के विहान जिन जौन थान खोले नैन,
मानव बनायो, मनुजादन कौ ज्ञान दै।
मातृभूमि - पितृभूमि - पुण्यभूमि - धर्मभूमि,

मानी जिन भूमि सदा मातु कौ ही मान दै।।
अजी - अज्ञ आये कहीं - कहीं ते बताये जात,
आये कहीं - कहीं के, जो आजहूँ पिछान दैं।
सिद्ध खलनायक स्वकर्मन ते नायक वे,
नायक न, गये देस - धर्म पै जो जान दै।।२२५।।

एकु तोड़ै जात, एकु जात जोड़-तोड़ करैं,
नित दल टूटैं-बनैं, बन्यौ देस दलदल।
नाम लोकतंत्र के कुमंत्रिन के मंत्र चालैं,
भरे मन-वचन-करम पोर-पोर छल।।
स्वयं समस्यान कौ विधान संविधान करै,
दाबि पदतल समाधान खूदै तल तल।
सोई तेत्यो बड़्.यौ ज्ञानी-दानी-बलखानी-मानी,
पलत पिटारे जाके जेते विषधारी खल।।२२६।।

नित-नित देस के प्रदेस परदेस होंय,
सिकुरि-सिकुरि सीमा बनैं गली साँकरी।
ऐते पै भी कहैं बटमार बँटवार्‌यौ कर्‌यौ
पटा पटवारिन बिठाय लेत पाटरी।।
कासों माँगे न्याय भूमि-भूमि भूमिपाल भरे,
आपने लै बाट तोलैं आपनि लै ताकरी।
आवै जो भू - पाल बनि आपन्यौ सो पेट पालै,
पेट ऐस्यौ लेटें जामैं सुरसा ह्वै बावरी।।२२७।।

बाढ़ खड़ी खेती खानी बढि-बढ़ि बाढ़न लौं,
रक्षक ही भक्षक की भूमिका निभावते।
रक्षक स्वरक्षा - भीति अंगरक्षकान - भीति,
घिरे लागैं घेरि भट नामी डाकू लावते।।
भीख कौ कटोर्‌यौ लिये घूमैं देस - देसन मैं
दबि कर - भार प्रजा चोरी करै चाव ते।
देस मोल लिये दास सरिस उदास होय,

टुकुर - टुकुर ताँके डर्‌यौ छांव - छांवते।।२२८।।

यों तो दृग कर्ता ने उघारे तो उघारे देखे
या भी सचु धर्म छल्यौ धर्म ही के स्वाँग सों।
जग कृति प्रकृति की या भी याँहि भाख्यौ गयो,
चलि पायो चारवाक पै न दोनों टांग सों।।
पाप वृत्त - परिधि अधर्म जुग - जुग छुई,
अधिक पै पायो बनि गरल न भांग सों।
कलि पै अधर्म सों विधर्म मिलि धर्म दलै,
दहलि दहारि जनु कांव - कांव बांग सों।।२२६।।

ज्ञान - समुदाय अवलोकि कै वैशिष्ट्य जाको,
कहिकै विज्ञान बिछि जाय बनि पाँवर्‌यौ।
सिंधु - गुरुपुत्र पै चढ़े जो राघौ - पार्थ बन
उतरे न, दंडहिं दियो पै दंड - आसर्‌यौ।।
धरि वा विज्ञान को सुनाम, मात्र ध्वंस हेतु
बनै कालनेमि लौं कपीस - पथ - पाथर्‌यौ।
प्रायश्चित हीन आत्मघात को प्रबल पाप,
करन कौ उत्सुक सो लागयौ जग - बापर्‌यौ।।२३०।।

बैठि एक डारि एक नाँव अरि - भाव भरि,
आरी मार छेदैं दोऊ, चारन के अँधरें।
आँखिन पै पाटि बाँधि, मदक पी, कुहू निसि,
दौरि-दौरि फेरे दैंय काचे-कूप-बाखरें।।
तिन्हहि स-संज्ञ कौन सोचि-सोचि संज्ञा देइ,
कहे 'लेत वर मृत्यु - सुंदरी को भांवरें'।
याहि दशा विश्व की विलोकी ध्रुव नैना मूँदि
देस-देस जन-मन मलिन, ही बावरे।।२३१।।

लागी सृषि जनु सत - हीनी कोई सती होन
जानै बिनु ताप - ताप जावति सिँगरिकै।

कीरति सों जरे जानि, मान्यन कौ मान हति,
चिता चढ़ि चिंगी देखि भाजति उछरिकै।।
त्योंहि ध्वंस - साजन सजन सों न आती बाज,
भीत हँसै - बोलै ज्वालामुखी पै पसरिकै।
दादुर भुजग - मुख जात्यौ - जात्यौ डांस गहे,
डांस दाढ़ - दंसन कौ जावत अकरिकै।।२३२।।

देख्यौ पुनि जगत की ताकत समस्त मिलि,
भारत को ताकत अनेकन प्रकार से।
कोई मत हेतु, कोइ मतनु कौ लालच दै,
काहू को लगाव काहू नदी से, पहार से।।
फल - फूल - खनिज - वनौषधि चहत कोई,
खींचन्यौ, दै कांच कोई कंचन व्यापार से।
संस्कृति पै खीझ्यौ, कला - कौसल पै रीझ्यौ कोई
"लूटि, लूट बैठि बाटैं" सोचैं बटमार से।।२३३।।

माचै आर - छोर ऐस्यौ रोर जनु ढोर लरैं,
कोर पोर - पोर की जरै कि लहू न्हावती।
कैसे भाई - भाई होंय, कैसिक मिताई होय,
केहिं कौ सगाई कहैं, कहै नहिं आवती।।
बैठिकै नगीच कौन आंतन कौ लावै खींच,
भाजन की जावै बनि भोजन की पावती।
पांत कालनेमि - दसाननन की साधु बनि,
हरि दोनों भैयन सहित सिय, धावती।।२३४।।

दोहा : ध्रुव ग्लानि एवं निवेदन

बिलखि उठ्यौ ध्रुव हिलकि कै, देखी जाइ न नाथ।
जगती जरति अनाथ लौं, धर्म रह्यौ धुनि माथ।।२३५।।

जननिहुँ ते बढ़ि पूज्य - प्रिय, मोहिं मम भारत भूमि।
निज अघ जगती - कृत कृतनि, यहि लीलहिं क्षय - ऊर्मि।।२३६।।

दोहा

करुना भय बनि, बनि घृणा, क्षण महुँ पुनि रिस घोर।
हरि - स्वभाव हिय सुमरि ध्रुव, बोलि उठ्यौ कर जोर।।२३७।।

कवित्त

लैके कर - कंज पद - कंज मुख - कंज डार्यौ,
जाके वट - पत्र - पुट नाथ! न बिसारिये।
भरि पद - लोहू जाकी मांग जाके कंटकनि,
शेष - शीश पंकजनि पंक जनि डारिये।।
गैयन चराई जाकी धूरि धमाचौकरि की
धूरि वा सुधूरि परै पलक उघारिये।
भारत पै टूटे दनु मिलि जुग तीनन के,
सुधरैं सुधारिये, न सुधरैं सँहारिये।।२३८।।

श्री कल्कि रूप दर्शन

देख्यौ ध्रुव क्षितिज पै क्षितिज फलाँगत्यौ सो,
आवत्यौ प्रकास दिव्य दामिनी - कलाप सो।
एक बेरि चौंकि चकाचौंधि चुँधियाये चख,
खोले उत्कंठित है, कर करि झाँप सो।।
वासव मतंग छवि, माधव विहंग गति,
शशि के कुरंग सो, दिनेश - रथ दाप सो।
शिवा - सिंह अंतक - महिष सो अमर्ष भर्यौ
आत्यौ एक अश्व धसकात्यौ धरा टाप सो।।२३९।।

खुरन सों धूमकेतु केतु फहरात उठैं,
सागर - सलिल तप्त तैल लौं उबालते।

अंबर की मेघमाल उरत अयालन सों,
नासा - वाह कंदुक लौं सैलन उछालते।।
गति कौ सुवेग लखि दिसि दिसि खोजै लागीं,
रौंदि दिगपाल भाजैं रहे जिन्ह पालते।
अंतक अनंत के आतंक है तुरंग - अंग,
मंदर लौं मेदिनी उदधि मथै डालते।।२४०।।

आँखि फारि भीति - भर्‍यौ देखत जगत सार्‍यौ,
क्या ये दिग्पालन के दिग्गज लरत हैं।
भूमि - डोल डोलत कि शनि - गीध गाजत कि
भार सों है व्याकुल कि शेष मसकत हैं।।
जानि रवि चंद सातों - सिंधु उछलत हैं कि,
बादर भिरत हैं कि धरा धसकत हैं।
कैसे बम्भ चालैं लागैं ज्वालामुखी फाटैं 'ना - ना'
कल्कि जी के आवन के धौंसा धमकत हैं।।२४१।।

विस्मित है सप्त - ऋषि भरि - भरि कौली कहैं,
'जगत - पसारा विधि कैसेक सम्हारा है।
खांडव पचाय पुनि तांडव मचावन कौ
हियरे विचार दृढ़ अनल कि धारा है।।
मिलन गिरीश सों नदीस हठ ठानि कहा
तीसर्‍यौ त्रिलोचन कि लोचन उघारा है।
वज्र सुरराज को कि दंड यमराज कौ या
ना - ना दिख्यौ - दिख्यौ या श्रीकल्कि को दुधारा है।।२४२।।

दनु दहलाहिं हिव वेगहुँ विलोकि करि,
देखि के दुलत्ती दिग दंती चकराये हैं।
टाप टपाटपनि सों फूटैं पटापट मुंडी,
पाटि पृथी खलन बिछौना लौं बिछाये हैं।।
धूर करि नासिका की प्रबल प्रभंजननि

धरा धीर - धारिन के धीरज धसाये हैं।
मारुत कौ मन कौ सुबेग कौ हरात जनु
कल्कि के तुरग हरि - बिहग ह्वै आये हैं।।२४३।।

खाइ - खाइ खम, बम धमाधम धात धरा,
फोरत पताल कौ कपाल तल चीरिकै।
छूटैं छोटी - छोटी फूलझरी ब्योम बीथिकिन्ह,
धरा सों फुहार उठैं बाड़ौ - दावौ नीरिकै।।
दिसि - दिसि पूरैं चौंक चांकी बहु - रंगन की,
खेलै जनु काल फाग मूठ दै अबीरिकै।
बारह - बारह कोस परे कोउ एक दीप दिखै,
कालि लौं न पात तिल तली भरि भीरिकै।।२४४।।

हनन को राखे एक दूसरे के आयुध जो,
करन विस्फोट लागे आपने ही कोट में।
दिख्यौ न संस्फोट अन्य जुगी औतारन को सो
लागी नाश - हाट पै वा शब्द रहे होट में।।
चोट लोक - लोक की दै नाक - कान - चोटि भाजीं
जाके नाक - कान नाँहि दीखे ताकी चोट में।
लाग्यौ भस्मासुर सिर आपुन्यौ ही हाथ राखि,
पर्यौ काहू रूप - कूप बँधि राखि पोट में।।२४५।।

सोरठा

देखि काल कौ काल, सिकुरि गयो ध्रुव सहमि कै।
ऐस्यौ दृश्य कराल, यह केहिं कौ केहिं भांति कौ।।२४६।।
दस - दिसि उठीं पुकारि, 'पद्मापति हरि कल्कि जय'।
निष्कलंक असुरारि, निष्कलंक हरि वस्तुतः।।२४७।।
चारहुँ चरन समेत, ज्यों आयो पहिले चरन।
राहु - केतु ह्वै रेत, त्यों धायो कलि काल - पुर।।२४८।।

करत म्यान करवाल, उतरत हय की पीठ सों।
भू सों वचन रसाल, कहि, हरि अन्तर्हित भये।।२४९।।

सवैया : विराट रूप दर्शन

ध्रुव देख्यौ पुनः जल में, थल में, नभ में हरि की छवि व्यापि रही।
जड़ - चेतन - कीट - पतंग - गयंदन मैं सोइ झांकि सी झांकि रही।।
कोउ दीखै नचावनि हार्यौ नहीं, अविराम पै प्रक्कृति नाचि रही।
नित काढ़ि अकार अकारन ते निरकार सकार लौं बाँटि रही।।२५०।।

पुनि देख्यौ उठ्यौ सिर अंबर पै, तल के तल पाद - तली के तले।
नस - नारिन लौं सरितान के जाल, महीधर अस्थिन के पटले।।
अँग - अंग अनंत न देखे सुने वे अलौकिक - लौकिक जीव पले।
प्रति श्वांस करैं क्षय लोकन कौ, पुनि सृष्टि - समुच्चय फूले फले।।२५१।।

लखि रूपन ठाट विराट की हाटन ध्रू अकुलाइ करी बिनती।
सिसु कौ वहि रूप दिखाइय जू, लहैं सीतलता अँखियां जलती।।
रस के रस हे रससागर! नीरस भूमि विराट की भै भरती।
भय जो हरती प्रहलाद की देखी दिखाव सो मूरति विश्वपती।।२५२।।

सोरठा : ध्रुव प्रतिज्ञा

तीनहुँ वयहिं विचारि, तीनहुँ हठिनहुँ ठानिकै
बैठहुँ सो व्रत धारि, तीनलोकपति! गुरु दियो।।२५३।।

छप्पय : ध्रुव साधना

करि ध्रुव जमुना स्नान, पुहुप - प्रतिमा पूजन करि।
जननी - आशिष ध्यान कियो नारदहिं नमन करि।।
केवल बेर - कपित्थ लेइ निशि तीन अनन्तर।
ध्यात्यौ हरिहूँ रह्यौ मास भरि बाल निरंतर।।
छैः - छैः दिन उपवास करि, मास दूसरे मास भरि।
पतित - पात तृण - शुष्क लै, रह्यौ दिवस - निशि भजत हरि।।२५४।।

नव - नव दिन पश्चात्, तीसरे मास मात्र जल।
लै, ध्रुव लगा समाधि, कियो आराधन अविकल।।
द्वादश दिवस निकारि, वायु पी श्वांसनि जय कर।
आराध्यौ धरि ध्यान, चतुर्थ मास नृप - सुकुँवर।।
परब्रह्म चिंतन - निरत, मास पाँचवें एक पद।
लग्यौ भक्ति ध्वज - दंड सो, ज्ञान दुर्ग - शेखर शुभद।।२५५।।

खड़्यौ एक पद लग्यौ, जोरि कर सुर - सैनप सो।
तारक विघ्न निकाय, प्रचारत शक्ति सबल सो।।
निजाखेट हठ हठी, प्रथम दिन केहरि - छौना।
ठाड़्यौ कंदर - द्वार, शशक - शिशु मानि खिलौना।।
अधार कठिन प्रण छत्रि सो, चितवनि चंचल बाल सी।
तरुणी उत्कंठा हृदय, मति उल्लोल उछाल सी।।२५६।।

खींचि सकल शब्दादि, नियामक इंद्रिन कौ मन।
चपल चित्त करि अचल, कियो हिय हरि को चिंतन।।
तजि महद्दादिक - तत्त्व व्यक्त - अव्यक्त चेतना।
कीन्हि प्रकृति - पुरुषेश परब्रह्म की धारणा।।
धरती पादांगुष्ठ दबि, शनैः शनैः लागी झुकन।
चढ़त मत्त गजराज के, ज्यों लागै लघु तरि डिगन।।२५७।।

सवैया

दनु दारुण दोपन ते अबलौं दबन्यौ रहि जानति जो धरती।
मनु - पूत के पूत के पूत सुकृत्य सुदृश्य निहारिकै सो धरती।।
स्वयमेव कृतज्ञता - भाव झुकी, झुकती यदि नाहिंन वो धरती।
नहिं धारत्यौ धर्म, प्रभात प्रणाम न मातु लौं पावति तो धरती।।२५८।।

तप - तेज दिवाकर मंद पर्यौ, रजनीश अँगार - अगार भयो।
क्रतु लागे शतक्रतु कौ शत ऊन, श्रुतीन कौ नेति सकार भयो।।
वय देखि वयोविध बाल लगे, बरनाश्रम सुद्ध सुधार भयो।
सिर शेष कौ भार झुका न सके जिमि, ज्यों ध्रुव कंठ कौ कंठा भयो।।२५९।।

देवलोक में हलचल

असमंजस पूरित शंकित शक्र सिँहासन बैठि - उठै - उतरै।
मुख ताँकत देवन कौ, कछु बोलि न पावत, बाउर सो बिचरै।।
जगदीश सौं जायो नरेश कौ चाहे सुरेश - पदी तप उग्र करै।
मन ही मन मौन विचार करै, जड़तानल ताप भरे हियरै।।२६०।।

समुझावत जीव अनेक प्रकार पै वासव - जीव न धीर धरैं।
हँसि रंभा कह्यौ 'सुरराज! निदेश करैं अबला अचला उतरैं।।
जिन बानन बृद्ध - ऋषीन की राशिन बींध्यौ शिलांजन पै रगरैं।
तव कीरति - केतु उड़ाहिं विजै करि बालक,' बोलति नैन झरैं।।२६१।।

हिचकी बँधि, बोलि न पावै कछु, मुख ढाँपि परी निज छादन सों।
सुर विस्मित, रोति न नाक नटी सुनि, या बिलखै केहिं कारन सों।।
सब सैननि प्रश्न करैं, कोउ उत्तर देत न बैनन - नैनन सों।
मुदिता सरिता निगलै मरु मौन, जु काढ़ि नरायन ही तन सो।।२६२।।

शर - चाप प्रसूनन के तजिकै, भजिकै निज अंक अनंग भरी।
''धरु धीर प्रिये! हिय - पीर वे जानैं? कबौं जिनकी पलकें न परी।।
सुनु, देव कौ अर्थ सदैव ही देव, कहो कछु लेव की, मैया मरी।
कहुँ, काह कहूँ, 'भजै सूख्यौ सो हाड़ लै, कोउ, लौं छीनि न लेय हरी।।।२६३।।

मुख पूँछि, उठा कठिनाइ सों मार बिठाइ, कह्यौ 'मितवा! थल वा।
चलिये, निष्कंप शिखी - शिखि सो दनुजारि - विकंपक बालक वा।।
जितु एकु अँगूठे के पोर - सुछोर लड़ैत्यौ खर्‍यौ हरि - ग्राहक वा।
इन दंभिन - सेज सजी मुझ पापिनि पातक - पुंज कौ पावक वा।।२६४।।

कवित्त

गंगा - पूर्व गंगा सी त्रिदिव लाँघि रंभा धाई,
मेनका - तिलोत्तमादि भागि संग लाग लीं।
उरवशी संपदा - सहोदरा लै अप्सरानि,
विद्याधर - गीतमोदी वायुवेग भाग लीं।।
थनन चुआती सी रँभाती वत्स - हेतु जाती
लागी कामधेनु धाती पंगति मैं आगली।
काम - प्रिया जाती अविराम अभिराम लागी,
ध्रुव - रति मातु - रति रति जनु पागली।।२६५।।

शिवा बोली शिव सौं प्रथम बेरि भौं तरेरि,
बानी कही विधि सौं है मौन पद थाम के।
ऋद्धि - सिद्धि मोदक दुराय बैठीं हेरँब के,
'हा - हा' करि हाड़े खाये स्वाहा जीभ - सात के।।
शची देव - सभा दुतकारे देव - देवराज,
यमुना ने राखी राखी बांधी नाँहि भ्रात के।
पद्मा पद्मनाभ पद - पद्मनि पछार खाई,
'ध्रुव पै पसीजे क्यों न प्रान रमानाथ के'।।२६६।।

महासौध विश्व - विषयन के विलासन के,
इंद्रिन कपाट पाटे महामौन अर्गला।
चढ़ि प्राण प्राणायामारोहिणी त्रिकुटि - अटा,
साजे ले अनन्या - मति अरुणा - समुज्ज्वला।।
चित्त - सरि हरि जगदात्म सरि - पति डारि,
बिंदु सिंधु, हरिजन हरि रूप बदला।
ध्रुव - स्वांस प्रक्रिया की अद्‌भुत प्रतिक्रिया ना
झेल पाई अग - जग जीव - राशि अबला।।२६७।।

दोहा

त्रिभुवन जंगम जड़ भये, लखि स्व - श्वांस अवरुद्ध।
दिसि - दिसि गूँजी नभ - गिरा, लखि शरणागति शुद्ध।।२६८।।
'नृप - सुबाल - वय, या समय - मोसों सिद्ध अभेद।
ध्रुवहिं करहुँ ध्रुवहूँ विपल, हरहुँ सकल कर क्लेद''।।२६९।।
रुक्यौ न सुर सुरलोक इक, सकल आए ध्रुव - धाम।
कीन्हौं हरि - जन जापि हरि, निर्जन तीर्थ ललाम।।२७०।।
निश्चल - मति सो तन अचल, जनु कोउ प्रस्थर - मूर्ति।
प्राणवान तप - मूर्ति सो, आपनि आप सुपूर्ति।।२७१।।

कवित्त

ध्रुव की तपस्या देखि झुक्यौ भालदृग - भाल,
देखि ध्रुव - राग बानी - बीन खोजे रागिनी।
विधिहुँ विधान व्यवधान - कारी लाग्यौ निज,
पुण्य - दर्प - हीन भई दीन देव - वाहिनी।।
ध्रुव प्रानालोक लोक - लोक खोजि हारे कंक,
मुनिन कौ ज्ञानालोक लाग्यौ अमा - यामिनी।
भये नभ - फूल ते धरनि - धूल चारों फल,
प्रसौ - पीर जानैं कैसे झेली भक्ति भामिनी।।२७२।।

श्री हरि प्राक्ट्य

दसों - दिसि वहन अलौकिक बयारि लागी,
बाउरि बनान लागी जागी - जागी जगती।
आपोंआप हिय परे बीज, मन माली पाये
दृग सिंचि कोमल सु - कोंपलनि सु - मती।।
स्वांसानिल रोमन - अलिंदन कमंदन पै
भरि मृदु - फल फूल - मंजु लता खिलती।

चैत्ररथ - नंदन सुरभि - दाता ॠतुराज,
आयो मधुवन हरि - कृपा की प्रकरती।।२७३।।

लाग्यौ नभ एकाएक अमित आदित्य भर्यौ,
चंचलनि चमकि लै रंगन अनंत की।
दृषि उठी फैरे पट - पीत, वनमाल ल्हैरे,
बाजत मंजीर मंजु, कटि क्षुद्रघंटकी।।
वारी जाएँ शेष - रमणी ज्यों शेष - शीश मणि,
शोभा रत्न - क्रीट संग कुंतल - कदंब की।
तरल - सरल स्मिति खग सौं बजाती शंख,
उतरी चतुरभुजी मूरति श्रीकंत की।।२७४।।

वंदना अनेक करि जुरे चारों ओर देव,
मधुबन - छोर लौं गोलोक लाग्यौ लागने।
पूँछत कुशल - क्षेम बाढ़े ध्रुव - ओर जात,
विधि कह्यौ 'बार बड़ि करि दीन्ही आपने'।।
शंभु बोले 'बोलन्यौ जु व्यर्थ है पुरानी बान,
दीखत, दिखाय यम - द्वार खुल्यौ सामने।
भस्मासुर - कांड भयो बौनो, ज्यों उमा पै आजु
चंडी लौं तँकायो भोल्यौ, भले महाराज ने।।२७५।।

दोहा

देखि उमा - दिसि विहँसि हरि, पुनि रंभादिक नारि।
लखि, नत - शिर ध्रुव पहिं गये, सजल नयन असुरारि।।२७६।।

सवैया

हरि देख्यौ, खड्.यौ नृप कौ सुकुमार विड़ारि गुमान महातपि का।
वय देखत होंठन आवत प्रान, कहै प्रण 'पुत्र हौं छत्रनि का'।।
हरि देखि लग्यौ कृति पूरति कौ अब चित्त भया पटु - शिल्पकि का।
नव चंदन - डारि जो सूखन को गयो डारि उकेरि कृशा - लतिका।।२७७।।

अँखिया अँखिया हरि कौ तँकतीं, ध्रुव - मौन हरीं हरि - पुत्तलिका।
रस - रासिन - स्रोत रसाधर की रिसि मेरु दरी, बनि निर्झरिका।।
अनिमेष भये अनिमेष निहारहिं, दृश्य अपूरब संसृति का।
भगवान स्व - भक्त सों भेंट करैं किमि रंग मैं रंग भरैं तुलिका।।२७८।।

ढिग'जा परख्यौ बिसवास - सिला निज - वास बन्यौ सरधा वृतिका।
जिवत्यौ, जरि पंजरि कंचन तप्त, सुकोषहि प्राननि छू हतिका।।
मुख ऊर्ध्व, तन्यौ तनु सो तनु ज्यों हरि आवन हेतु रची सृतिका।
रवि - मंडल लौं लघु तेज कौ पुंज, लग्यौ ध्रुव धर्म धृती धृतिका।।२७९।।

छप्पय

हरिहूँ प्रकटै भई घड़ी - द्वै ध्रुव नहिं जाग्यौ।
सुर सराहिं ध्रुव - भाग्य, कहैं "हरि - सन यहि लाग्यौ।।
हरि - मनुहार - कुबानि हार - उपहार पाइकै।
सोचैंगी सौ बार, आजु कहुँ धाम जाइकै"।।
शिव समाधि मृदु - चरित लखि, देवहिं देख्यौ नयन भरि।
पुनि धीरे कहि 'मद भर्‍यौ, ध्रुव सुभाग्य सौं देखि हरि'।।२८०।।

मूर्च्छित गत - चेतना नाहिं, चेतना - निकेतन।
हरि सों क्रीड़ा करत रोम - रोमन के आँगन।।
युग के युग चलि जाएँ रहे ध्रुव अटल - अचंचल।
ध्रुव महुँ ध्रुव के संग भेद - विरहित जग - मंगल।।
कबकौ तप पूर्‍यौ भयो - ध्रुव कौ, अब तौ हरि तपहिं।
सोचहिं, वर दै दउँ विदा, सरल सखा पुनि कितु हमहिं।।२८१।।

कैसे अधम विचार, विचारहिं हरिहिं छकायौ।
हरिहुँ छकावै जौन कौन सी जननी जायौ।।
पायो स्वर्ग निवास, स्वमति करिकै स्वर्गीया।
परकीया हरि भगति, स्व - पूजा लगति स्वकीया।।

दनुज परामव देत जब, श्रीश - श्रीशपुर तउ दिखै।
श्री ही दीखति अन्यथा, भय न, काह अंतक लिखै।।२८२।।

पूजि - पूजिकै तुम्हहिं, बान तव भारत पावै।
मैया - जायन छाँडि, रिपुहिं बिनु बँट्यौ बँटावै।।
आपुन सत्पथ त्यागि, कुपथ - हित सुपथ बनावै।
काँखहिं काले पालि, भ्रात डसवाहिं, डसावै।।
भूलेहिं सों कहु भूल हो, तव पूजन यदि तवन सों।
तौ देखहुँ तव कोप - बल, जो न चलहिं दनु - दलन सों।।२८३।।

भजते हरिहिं सुभाव, आजु हरि पै नहिं हँसते।
करते हरि अनदेखि - न, तउ तुम एकु न दिंखते।।
हरि कौ मृदुल स्वभाव, कछुक मरजाद बिगारे।
सुरपति बनते कीट, अमित बहुबार निहारे।।
शंभु - अधार फरकत निरखि, सुरगुरु कहि 'थामहुँ चरन'।
परे भीत सुर भव - सुपद, कृपा निकेतन त्रय - नयन।।२८४।।

पुनि हरि पै हँसि कह्यौ 'खेल कितन्यौ बनमाली।
आवत याकौ पिता, भजहुँगे छोरि वनाली'।।
भरि आये हरि - नयन, नयन हर के भरि आये।
श्याम - शुक्ल भरि बाँह एक महुँ एक समाये।।
हर - दृग पूँछे पीतपट, हरि - दृग हर पूँछे जटन।
हर कौ मुदित निदेश पा, आये ध्रुव - ढ़िग मुर - मथन।।२८५।।

दोहा

एक बेरि दृग मूँदिकै, आपुन मोद निहार।
मायापति माया - रहित, लखि ध्रुव परम दुलार।।२८६।।
रोम - रोम ध्रुव के करत, विगत विभेद विहार।
आपुहिं ज्यों आपुहिं कियो, छिप्यौ छविन परिवार।।२८७।।

घिरी अमा प्रति रोम - नभ, सकल दीप्ति भइँ लुप्त।
जग्यौ विकल ध्रुव कौ विपल, देहज्ञान प्रसुप्त।।२८८।।

कुंडली

खुले, खुले ही रहि गये, ध्रुव के नैन बिसाल।
प्रमुदित चित विस्मित लख्यौ, अंतर सखा सुबाल।।

अंतर - सखा सुबाल, सरल मुस्कान भर्‌यौ मुख।
सुख पायो अभिराम, स्वप्न सो बीति गयो दुख।।
सोचन लाग्यौ, 'अंक लेइ पुनि - पुनि दुलरावें।
ज्यों देख्यौ प्रहलाद, तुरत त्यों हृदय लगावें'।।२८९।।

दोहा

ध्रुव - दृग हरि - दृग ताकहीं, हरि - दृग ध्रुव - दृग मांहि
भाव अनन्य जु जानि सक, अन्य शंभु सम नांहि।।२९०।।

पै अर्थार्थी सोचि, भरि - अर्थपूर्ण मुस्कानि।
हरि बोले 'वर माँगु प्रिय, अति प्रसन्न मोहिं जानि।।२९१।।

सवैया : ध्रुव उचाव

'पितु गोदि लियो तउ बैठि गयो, लघु मातु ढ़केल्यौ तौ रोइ पर्‌यौ।
जननी बन भेज्यौ तौ चालि पर्‌यौ, मग मंत्र दियो मुनि सो उचर्‌यौ।।
हरि रावरौ पाइ अधार खर्‌यौ, उजरे उजर्‌यौ न पर्‌यौ न जर्‌यौ।
'वर मांगु कहो' वर होत कहा, नहिं जानत हौं जु रुचै सो कर्‌यौ।।२९२।।

सुनि कै छल हीनि गिरा ध्रुव की, नहिं आँखि दिखी इक, जो न भरी।
विधि देखि गिरा, नत नैन भरी, भरि भावन शंभु गिरा उचरी।।
'भगवान औ भक्त मैं चौधरी है, करै को जग की पनही पगरी'।
श्रुति - बोध भर्‌यौ निज कंबु छुवा दियो ध्रू के कपोल कृपालु हरी।।२९३।।

कुंडली

निगमागम कौ गुह्य अति, दिव्य ज्ञान - विज्ञान।
ध्रुव - रसना रस - सरि सरिस, सरस्यौ बनि हरि - गान।।
सरस्यौ बनि हरि - गान, शंभु - अज करत्यौ विस्मित।
शब्द - शब्द परमार्थ भर्‌यौ, परमार्थ - निमज्जित।।
व्यास - समास विलास, आत्म - परमात्म तत्त्व मय।
''रामरंग'' नभ - गंग, करत क्रीड़ा ज़नु सुर - चय।।२६४।।

कवित्त : ध्रुव कृत हरि स्तुति

नमन, निकेतन अखिल शक्ति यूथन के,
आप ही तौ पैठि मम अंतहकरण मैं।
तृषा न तृषित, न क्षुधित क्षुधा होन दई,
तन होत क्षीण नाहिं जानौं एक क्षण मैं।।
तवाधार निराधार तव ध्वज - दंडाकार,
ठाड़्.यौ रह्‌यौ कृपा - कीली डारि ज्यों चरण मैं।
आप एकमेव अधिकारी हों सदैव देव!
मम - कृत नमन - स्मरण के ग्रहण मैं।।२६५।।

जिनके सुनाम मनवन्तर कौ राख्यौ नाम,
पितामै स्वयंभू - मनु पद पाए जो नहीं।
पिता श्री उत्तानपाद पाये पद नाहिंन जो,
जिनकी सुकीरति भुवन तीनि छा रही।।
द्वेष भरी बाल - बुद्धि वश ही अनाथ नाथ!
मारग मैं मुनिवर नारद सों हौं कही।
मदी - बकवाद सम पीड़ित - प्रलाप पै ना
धरत सुजान ध्यान, क्षमा बाल माँगही।।२६६।।

भयो मेर्‌यौ जन्म कष्ट पान हेतु - देन हेतु,
पायो कष्ट कौन ना, दियो ना कौन आपको।

मातु चूम्यौ माथ नैन - पाथ मैं भिजोय, बाप
जान्यौ सुत नाहिं, सुत जानै किमि बाप को।।
मंत्री स्नेह - मान सों न, याचक समान देख्यौ
करुणा या वर करुणेश! फेर शाप को।
शेष - सेज पौढ़त, जगत - काज ओढ़त को,
खग पै भजायो, या ते बड़्.यौ और पाप को।।२६७।।

कहा देऊँ ताँहिं जाको वास रत्नाकर माँहिं,
कहा देऊँ ताँहिं जाके पद श्री विराजती।
कहां देऊँ ताँहिं 'जगदीश! जगदीश' जाँहि
कहि - कहि लोक - रासि माथ नित नावती।।
मायापति! माया तव मन लै, जगत राचै,
मोरे मन मृगहिं सो सिंहनि सी ताँकती।
अभैदान दीजै, मन लीजै मेर्‌यौ, पूरति ना
तौ मन की जानौं, पै ना मूढ़ मति मानती।।२६८।।

शब्दन फिराई, रमा रसन, लुभाई रूप,
स्पर्शन भ्रमाई, गंध - खंदकनि डारती।
इंद्रिन - झरोखन मैं झाँकि - झाँकि ज्ञान - दीप
बुझा माया भुजगी अँधेरे फुफकारती।।
जरी - रजु अहि लौं दिखाती, घिघियात्यौ लखि
कुंडलिनी - घेरे डंक रोम - रोम मारती।
नाम - मणि - ज्योतित स्वभक्ति वास, कृपा - कोख
पालो, जितु माया धाय धाय लौं सम्हारती।।२६९।।

रावरै कथा - प्रसंग फुल्ल - अरविंदन के
मृदु मकरंद कौ मिलिन्द मोहिं कीजिये।
भावनानुकूल राग - रागिनि निगूढ़नहिं,
भाव वाद्य - वृंद कौ सुसंग नित दीजिये।।
तृषा धधकावे रूप - रसामृत प्याइये सो,

माधौ! मृदु लागै मोहिं मेर्‌यौ मद पीजिये।
आपको या अंस ना नृसंस कोई ध्वंस करै,
संक - अंक संसृति - औतंस हर लीजिये।।३००।।

लीला जो दिखाई तानुसार रमानाथ! कहौं,
संसृति - समर पार्थ सरिस सम्हारना।
रस - रसा कोल! काम - कीच मैं ते काढ़ि लाना,
नृहरि! समूल क्रोध - खंबहिं उपारना।।
मति द्रौपदी को नित आंचर की छांव देना,
गज लौं 'मुकुन्द मम नाथ' मद राखना।
मारुति लौं हरि! निजलोक - पदपीठि राखि,
अंत देना, दियो जिमि गीध कौ सिराहना।।३०१।।

काल की कराल करवाल भाल देखैं नित,
सुख कितु तिन्हैं जे बिराजे नाक - यान मैं।
भुवन न एक चंद तौ पदारविंद - भृंग,
रंग मंद करै रहौं तिन्हन के ध्यान मैं।।
जो न निजानंद - रूप - ब्रह्म मैं आनंद मिलै,
[illegible] ऊँ तव भक्तन के चरित सु - गान मैं।
रहूँ क्षण - क्षण सतसंग, तव स्मरण मैं,
पद गहि माँगौं एक याही वरदान मैं।।३०२।।

दोहा : देवों सहित श्री हरि वरदान

हरि बोले तव हृदय की, सुव्रत राजकुमार।
ज़ानत हौं, देउँ, यदपि - कठिन समस्त प्रकार।।३०३।।

छप्पय

तारक - ग्रह - नक्षत्र ज्योतिमय अमित चक्रवत।
धार्म - अग्नि - सप्तर्षि चतुर्दिक परिक्रमारत।।

जिस सु - लोक के, जाँहिं न पायो एकु आजु लौं।
सुस्थिर कल्पनि - गाजु नगाधिप नागराजु लौं।।
तोहिं आजु ध्रुवलोक सो, तव नामांकित देहुँ करि।
पाद - पीठि गोलोक को, सप्त - ऋषिन मंडल उपरि।।३०४।।
भद्र ! स्वपुर करु राज्य, लोक - लोकन ह्वै वंदित।
राखि वेद - मर्याद, धरित्री कर आनंदित।।
यज्ञ रूप मम सगुण, अमित विधि अमित - अमित कर।
पालि स्वांश सम प्रजा, सकल आधिन - व्याधिन हर।
भक्ति - शक्ति युत, विभव - प्रद, तोहिं नित - नित दिसि - दिसि करहिं।
तिन करि ज़ोरि अटूट रहिं, तोहि लखि जे वर - वधु वरहिं।।३०५।।
विधि बढ़ि दीन्हे वेद, शारदा वदन समाई।
महाकाल कहि 'छुवै काल नाहिंन परछांई'।।
'वचन न परै अकाल, भूमि तव' शक्र उचार्‌यौ।
'बढ़ै न तट सों बाढ़ि' वरुण कहि कियौ किनार्‌यौ।।
'देखहुँ मोहिं निज शर - फरनि', यम बोल्यौ सस्नेह लखि।
सुतन सहित गौरी कही, नैननि ही शिर करनि रखि।।३०६।।
हर्षित हिय, करि सह्य तेज, रवि दियो स्व - अंसहिं।
रंभादिक अप्सरा मुदित सुर - माल प्रसंसहिं।।
गाइ उठे गंधार्व, बजावन किन्नर लागे।
पितु - कुल वैभव देखि, यमुन - जल उछरन लागे
चढ़त दिखे हरि विहग पै, दिखे न पुनि किस दिसि गये।
धूरि उरति वन - सीम लखि, हरि लौं ही सब सुर - भये।।३०७।।

सवैया

है जग को, बिनु गाय - गिनै, बिनु हुंडि टिकाय अँगूठ्यौ, गवाहू।
याचक मात्र करै न अयाचक, द्वार खर्‌यौ करै साहू कौ साहू।।
साहू सो श्रीश ही, पूर्व स्वदर्श के दर्शन कौ फल देत अगाहू।
सिद्ध कियो ध्रुव पूर्व दृगान के, पा प्रति - रोम अनंत उछाहू।।३०८।।

छप्पय : नृप उत्तानपाद-आगमन

सुमन सुविग्रह कियो सकेरि कलिंदहिं अर्पित।
ध्रुव ज्यौं निकल्यौ न्हाइ, लग्यौ चंद्रिका निमज्जित।।
जावत सुरन्ह विमान, सुमन - संकुल बरसायो।
लग्यौ बाल कोपीन, पीन ऋतुपति भू आयो।।
इतने महँ निज पितु सदल, ध्रुव सम्मुख आत्यौ लख्यौ।
नृप उतानपद लखि सुतहिं, प्रमुदित चित यानहिं तज्यौ।।३०९।।
गिरत सुतहिं पद अंक लेइ, अँकवारी दीन्हीं।
अनुगनि भूषण खोलि - खोलि न्यौछारी दीन्हीं।।
सुरुचि - सुनीतिहिं देखि, चल्यौ ध्रुव आगे बढ़ि करि।
मां सों प्रथम विमातु - असीस लही ध्रुव पद परि।।
जननी हृदय लगाइ सुत, पाहन - प्रतिमा सी लगी।
सकुशल पाई पोत निज, दाव - शांति ज्यों तरु खगी।।३१०।।
कोख रिसन पय लग्यौ, नयन जल बरसन लाग्यौ।
गिरी - गिरी अब गिरी, सुतनु इमि काँपन लाग्यौ।।
गई चेतना गई, अचेतन लागी जननी।
ध्रुव थामत नहिं थमति, नृपति बढ़ि थामी रमनी।।
सुरुचि वदन छिरक्यौ सलिल, पुनि प्यायौ मनुहारि करि।
पति - सुत तजि माँ - जाइ सी, लइ सवतिया बाँह भरि।।३११।।
नृप करि यमुनास्नान, बिठा ध्रुव ध्रुव - टीले पर।
राजसि भूषन - बसन, तनय - तन साजे निज कर।।
कियो मुदित युवराज, स्वयं पुनि तिलक लगाकर।
उत्तम लीन्हों निकट बिठा, कर लेत्यौ चामर।।
यमुन - पुलिन रहि तीनि दिन, ध्रुव लै नृप आये नगर।
बाल यमालय सों फिर्यौ, मुदित भये इमि नारि - नर।।३१२।।
चंद्रकला लौं शनैः - शनैः ध्रुव बाढ़न लाग्यौ।
सात्त्विक सुत सानिध्य, नृपति - मन हरि - सन लाग्यौ।।

कबहुँ करत चित, सकल त्यागि हरि - भजन कर्यौं बन।
कबहुँ हरष मन होत, करत सुत - सुकृत विवेचन।।
कबहुँ ग्लानि अति होति हिय, 'हाय, तीन - पन निकरिगे।
कोष कांकरनि सौं भर्यौ, रतन करन सों खिसकिगे'।।३१३।।

सम्राट ध्रुव - यक्ष संघर्ष

एक दिवस दै तिलक ध्रुवहिं, नृप निकसि गये बन।
प्रजापति शिशुमार सुता भ्रमि कियो परिनयन।।
वायु - सुपुत्रि इला सँग रचि पुनि अन्य सगाई।
उत्कल - वत्सर - कल्प पुत्र, इक कन्या पाई।।
एक दिवस आखेट हित, ब्याह - पूर्व उत्तम गयो।
हिमगिरि इक भट यक्ष - कर, कंकालय - पाहुन भयो।।३१४।।
क्रोध - शोक - उद्वेग भरे हिय, बंधु निधन सुनि।
रथ चढ़ि अलका - द्वार, जाय ध्रुव करी शंख - धुनि।।
दिग - दिगंत गई गूँजि, कंदरा लगीं कि फाटीं।
अस्त्र - शस्त्र लै यक्ष डटे प्रति घाटी - घाटी।।
एक साथ यक्षान्ह - शिरन्हि, ध्रुव की धासीं शरत्रायी।
जावक - सेंदुर सों रँगी, लागी वसुमति वधु नयी।।३१५।।
कुपित यक्ष लै प्रास - परशु - असि - परिघ भयंकर।।
शूल - त्रिशूल भुशुंडि, शरासन चढ़ा प्रखर शर।।
टूटे एकाएक, लग्यौ ध्रुव भूप खो गयो।
ज्यों लग्तयौ खग्रास - समय जयि राहु है गयो।
हा - हा करि बिलखन लगे, गगनस्थित सुर - सिद्ध - गण।
अस्त भयो मानव - तरणि, यक्षार्णव दुर्धर्ष रण।।३१६।।
करि परकाय - प्रवेश योगि ज्यों देह बदलते।
पद्धति - प्रकृति - प्रवृत्ति प्रबुद्धन पै नहिं छिपते।।
त्यों मणि - रत्न - सनाह कसे ध्रुव पीतांबर धर।
प्रकटे यक्षन मध्य, तरुण ज्यों किंशुक तरुवर।।

दिव्य धनुष - टंकार सों, जीर्ण कवच करि शीर्ण हिय।
यक्षन के तन रहत ध्रुव, करि दीने तन - रहित जिय।।३१७।।
करत कुपित ध्रुव सतत, पुनीत प्रभूत यक्ष क्षय।
देखि स्वयंभू मनु सहिष्णु ले तपी - समुच्चय।।
बोले 'क्रोधाधिक्य नरक कौ द्वार पुत्रावर।
उचित जाति - संहार न दोष एक कौ पाकर।।
हेतु रहित हिंसा - कुपथ, योग्य न अपने वंश के।
आयुध भूषण वीर के, दूषण कुटिल नृशंस के।।३१८।।
सुनि दादा के वचन, उतार्यौ ध्रुव धनु सों शर।
धरि पद - धूरि किरीट, प्रणाम कियो गिरि भू पर।।
समर - विरत ध्रुव जानि, धनाधिप स्वयं पधारे।
नमन करत, हिय लाइ, कही 'केहुँ नहिं केहुँ मारे।।
'कालोऽहि दुरतिक्रमः' केहिं कर पार बसात नहिं।
सकल स्वकर करनी करत, सुर - वर गात - दिखात नहिं।।३१९।।
सादर पुर लै जाइ, दिव्य - मुरि व्रण भरि दीन्हें।
दै भेंटन पै भेंट, धनद आपुन सम कीन्हें।।
दई चैत्ररथ - पौध, सगुण - आसिस सम सादर।
हरि - भक्तहिं लखि वैर - विगत भे गुह्यक - किन्नर।।
पूजि राजराजेश्वरी, ध्रुव पहुँचे कैलास पर।
प्रियतम कौ प्रियवर निरखि, भये शिवा सह मुदित हर।।३२०।।

ध्रुव निर्वाण

पालि अमित विधि प्रजा, विविध विधि दुर्लभ मख करि।
गयो बदरिकाश्रमहिं, मुकुट उत्कल - मस्तक धरि।।
'हौं ध्रुव' भूले जपत - जपत हरि - नाम निरन्तर।
देख्यौ एक विमान आवत्यौ नभ सों भू पर।।
पार्षद् नंद - सुनंद जो, हरि - प्रिय हरि सम वेष - छवि।
खड़े गदाश्रय पौर पर, जनु प्रतिहारी वेष रवि।।३२१।।

''मेरे प्रभु के पुण्यश्लोक प्रधान पारषद।
मेरे सम्मुख खड़े'' भयो ध्रुव कौ हिय गद - गद।।
पूजादिक - क्रम भूल, जोरि कर तुरत संभ्रमित।
ठाड़े ह्वै, करि नमन, हुए कीर्तन - रत - सच्चित।।
रमारमण - करुणाअयन - परम मनोहर - चक्रधर।
अशरण शरण - कृपालु - हरि - वासुदेव - वाराह वर।।३२२।।

गरुड़ध्वज - गोविंद - मुकुंद - जनार्दन - माधव।
शेषशायि - भगवंत - अनंत - धनुर्धर राघव।।
इंद्रावरज - उपेन्द्र - अधोक्षज - पुरुष पुरातन।
पद्मनाभ - वैकुंठ - सनातन - श्रीनारायण।।
दामोदर - अच्युत - अनघ - वनमाली - कैटभ जयी।
राम - कृष्ण - मुरमदमथन - लोक सृजक, पालक, क्षयी।।३२३।।

उतरे नंद - सुनंद यान से मृदु मुस्काते।
बोले 'राजन! धन्य' पास अति आते - आते।।
''अति लाघव लघु - वयस, किये प्रमुदित परमेश्वर।
भक्ति राज - पथ - पुलिन किये पुलकित सुर - तरुवर।।
त्रिभुवनपति - मायेश हरि , जिन कहुँ तुम सुमिरहु सतत।
दास दास हम उनहिं के, तव सम्मुख कर जोरि नत।।३२४।।

परम रम्य वह लोक सप्त - ऋषि - गन कहुँ सहज न।
करत प्रदिच्छन जासु प्रतिक्षन रवि - शशि - ग्रह गन।।
कीजिय तहहिं निवास, देत दिशि सकल जगत - हित।
श्रीपति भेज्यौ नृपति! सुदीप्त विमान सुसज्जित।।''
सुनिकै पार्षद - जन - वचन, ध्रुव नहाइ नित - कृत किये।
बदरी - वनवासी - मुनिन, करि प्रणाम आसिस लिये।।३२५।।

करि विमान पूजन - प्रदक्षिणा, नमन पार्षदहिं।
दिखी सुंदरी एक, यान - सोपान समीपहिं।।

पूँछ्यौ ध्रुव ''को देवि'' जोरि कर बोली ''राजन।
मृत्यु हमहिं जग कहहिं'' सुनत ध्रुव लागे देखन।।
पुनि बोले ''हम तौ सुनी, अतिशय मृत्यु भयंकरी।
पै अब लगि देखी नहीं, तुम समान तुम सुंदरी''।।३२६।।

जिसको जैसो इष्ट, अभीष्ट पाय सो तैसो।
वय भरि देखै जीव, जगत या दीखै जैसो।।
अंत समय निज दृगनि जर्‍यौ दर्पन सो पावै।
जामैं अंतर - बिंब जीव निज लखत्यौ, जावै।।
हम कछु ना प्रतिबिंब तव, तुम सुंदर हम सुंदरी।
सुजनन सजनी बाजती, भयदन हेतु भयंकरी''।।३२७।।

बिछी यान - सोपान पांवरी बनि रत्नारी।
करि प्रणाम ध्रुव भूप चढ़े धारे भुज - चारी।।
बजा वाद्य सुर - वृंद सुमन बरसावन लागे।
जननी आई याद, लखी ध्रुव जावति आगे।।
श्री - श्रीपति सौं श्रीशपुर लै निदेश - आसीस बहु
ध्रुव प्रणाम करि स्थित भयो, उत्तर - दिसि निज लोक महु।।३२८।

छप्पय

कवि, भगवति - हरि लगन, मुदित महि - तनय बिराजै।
राहू तुला तृतीय, स्वगृह - हित गुरु सुख साजै।।
शनि घट, घट भरि सक्यौ न जाकर, मांगभरी घर।
धर्मसदन कुज - कक्ष केतु लै चंद - कवीश्वर।।
कर्मालय ग्रहराज सँग, उशनातिथि तारा - तनय
मिथुन - तत्व - नभ - दृग असित - तपन - प्रदोष त्रिदोष लय।।३२९।

सोरठा

चतुवर्ग कौ दानि, बाल - भक्त ध्रुव कौ चरित।
सकल हानि की हानि, करत सदा हरि - जनन की।।३३०।।
दास नरोत्तम दास, 'रामरंग' करि हरि - स्मरण।
सीस लगा सोल्लास, धरत लेखनी, उठन - हित।।३३१।।

''मेरे प्रभु के पुण्यश्लोक प्रधान पारषद।
मेरे सम्मुख खड़े'' भयो ध्रुव कौ हिय गद - गद।।
पूजादिक - क्रम भूल, जोरि कर तुरत संभ्रमित।
ठाड़े है, करि नमन, हुए कीर्तन - रत - सच्चित।।
रमारमण - करुणाअयन - परम मनोहर - चक्रधार।
अशरण शरण - कृपालु - हरि - वासुदेव - वाराह वर।।३२२।।

गरुड़ध्वज - गोविंद - मुकुंद - जनार्दन - माधव।
शेषशायि - भगवंत - अनंत - धनुर्धर राघव।।
इंद्रावरज - उपेन्द्र - अधोक्षज - पुरुष पुरातन।
पद्मनाभ - वैकुंठ - सनातन - श्रीनारायण।।
दामोदर - अच्युत - अनघ - वनमाली - कैटभ जयी।
राम - कृष्ण - मुरमदमथन - लोक सृजक, पालक, क्षयी।।३२३।।

उतरे नंद - सुनंद यान से मृदु मुस्काते।
बोले 'राजन! धन्य' पास अति आते - आते।।
''अति लाघव लघु - वयस, किये प्रमुदित परमेश्वर।
भक्ति राज - पथ - पुलिन किये पुलकित सुर - तरुवर।।
त्रिभुवनपति - मायेश हरि , जिन कहुँ तुम सुमिरहुँ सतत।
दास दास हम उनहिं के, तव सम्मुख कर जोरि नत।।३२४।।

परम रम्य वह लोक सप्त - ऋषि - गन कहुँ सहज न।
करत प्रदिच्छन जासु प्रतिक्षन रवि - शशि - ग्रह गन।।
कीजिय तहहिं निवास, देत दिशि सकल जगत - हित।
श्रीपति भेज्यौ नृपति! सुदीप्त विमान सुसज्जित।।''
सुनिकै पार्षद - जन - वचन, ध्रुव नहाइ नित - कृत किये।
बदरी - वनवासी - मुनिन, करि प्रणाम आसिस लिये।।३२५।।

करि विमान पूजन - प्रदक्षिणा, नमन पार्षदहिं।
दिखी सुंदरी एक, यान - सोपान समीपहिं।।

पूँछ्यौ ध्रुव "को देवि" जोरि कर बोली "राजन।
मृत्यु हमहिं जग कहहिं" सुनत ध्रुव लागे देखन।।
पुनि बोले "हम तौ सुनी, अतिशय मृत्यु भयंकरी।
पै अब लगि देखी नहीं, तुम समान तुम सुंदरी"।।३२६।।

जिसको जैसो इष्ट, अभीष्ट पाय सो तैसो।
वय भरि देखै जीव, जगत या दीखै जैसो।।
अंत समय निज दृगनि जर्यौ दर्पन सो पावै।
जामैं अंतर - बिंब जीव निज लखत्यौ, जावै।।
हम कछु ना प्रतिबिंब तव, तुम सुंदर हम सुंदरी।
सुजनन सजनी बाजती, भयदन हेतु भयंकरी"।।३२७।।

बिछी यान - सोपान पांवरी बनि रत्नारी।
करि प्रणाम ध्रुव भूप चढ़े धारे भुज - चारी।।
बजा वाद्य सुर - वृंद सुमन बरसावन लागे।
जननी आई याद, लखी ध्रुव जावति आगे।।
श्री - श्रीपति सौं श्रीशपुर लै निदेश - आसीस बहु।
ध्रुव प्रणाम करि स्थित भयो, उत्तर - दिसि निज लोक महु।।३२८।।

छप्पय

कवि, भगवति - हरि लगन, मुदित महि - तनय बिराजै।
राहू तुला तृतीय, स्वगृह - हित गुरु सुख साजै।।
शनि घट, घट भरि सक्यौ न जाकर, मांगभरी घर।
धर्मसदन कुज - कक्ष केतु लै चंद - कवीश्वर।।
कर्मालय ग्रहराज सँग, उशनातिथि तारा - तनय।
मिथुन - तत्व - नभ - दृग असित - तपन - प्रदोष त्रिदोष लय।।३२९।।

सोरठा

चतुवर्ग कौ दानि, बाल - भक्त ध्रुव कौ चरित।
सकल हानि की हानि, करत सदा हरि - जनन की।।३३०।।
दास नरोत्तम दास, 'रामरंग' करि हरि - स्मरण।
सीस लगा सोल्लास, धरत लेखनी, उठन - हित।।३३१।।

रेखांकित शब्दों के अर्थ

छंद	शब्दार्थ			छंद	शब्दार्थ		
८.	रहितवनि	-	रहने वाली		रौरौ	-	रौरव नरक
			जो दयावश	३४.	धरनीसुर	-	राजा
			रखी हुई है।		लीक	-	जूं
१३.	वायस	-	कौवा		संख	-	माथा
	मृगत्रासक	-	मृगमारीचिका		अँगना	-	नारी
	अधोक्षज	-	विष्णु		अँगहीन	-	अनंग
१६.	असार	-	सारहीन, व्यर्थ		मनुजात	-	मानव
१७.	विभासित	-	प्रकाशित		मनुजाद	-	दानव
२५.	गाती	-	स्त्री की साड़ी	३५.	दई	-	दैया
			का वह भाग		आकन	-	आक
			जो स्तनों पर	३७.	सव	-	शव, मुर्दा
			रहता है।	३८.	कुंतल	-	बाल
२६.	गजमारी	-	हाथी से कुचली		भीतिन	-	दीवारें
			हुई।		पजारे जोगी	-	जलाने योग्य
२७.	पौसी	-	पौष की	४०.	धीसख	-	मंत्री
२८.	परजंत	-	पर्यन्त		राजिन	-	पंक्तियें
	जायो	-	पुत्र		धी	-	बुद्धि
२९.	तनु	-	छोटी		अगस्ति	-	अगस्त्य तारा
	गोड़े	-	घुटने				जिसके उदय
	वितस्ता	-	बालिश्त				होने पर वर्षा
	सांथरी	-	घास का				का जल सूखने
			बिछौना				लगता है।
३०.	दिगंबर	-	वस्त्रहीन	४५.	उतसादन	-	उबटन
	चाँकी	-	बिजली	५१.	कनियां	-	गोद
	अंडजो	-	पक्षी	५५.	पाइ	-	पाँय, चरण
३२.	केकनि	-	मोरनी		हला	-	सखी
	छीन	-	दुर्बल, पतला		कोह-किला	-	क्रोध भरा
	परिव्राजक	-	यति	५८.	कान	-	स्वाभिमान

छंद	शब्द		अर्थ
६९.	विभास	-	प्रकाश
	मयूरवन	-	किरणें
७०.	तरुवान	-	तलुवे
७५.	स्रुव	-	झरना
	स्रौन	-	श्रवण
७६.	इंद्रनीलमणि	-	नीलम
७७.	पोतहिं	-	जहाज
	खंजन	-	नीलकंठ पक्षी
	पारिजात	-	कल्पवृक्ष
७८.	चांकिन	-	बिजलियां
	मंदाकिनी	-	स्वर्ग की गंगा
७९.	विभूति-भूति	-	अलौकिक लौकिक संपदा
८०.	भौ-चक्र	-	संसार चक्र
	खगेशी	-	गरुड़-वधू
	क्रतु	-	यज्ञ
	मृतु	-	मृत्यु
८१.	बिरुद	-	यश-कीर्ति
८२.	घुटुरन्यौ	-	घुटनों के बल
८३.	सूपकार	-	रसोइया
	समाहार	-	समूह
	नौ	-	नव-नवीन
८५.	परमाविरोधी	-	अत्यन्त अनुकूल
८७.	क्षीरधि	-	क्षीर सागर
८९.	पिक प्रेय	-	आम का फल
९०.	प्रांगुल	-	पंगु
९१.	पुसकरनी	-	बावड़ी
	विजया	-	भांग
	क्षय-दधि	-	प्रलय सिंधु

छंद	शब्द		अर्थ
९२.	वा-तिय	-	वह स्त्री (माया)
९३.	विधि-व्यूह	-	विधाता के आयुवर्ष युग-कल्पादि
९९.	गुह	-	कार्तिकेय
१०२.	इंद्रावरज	-	नारायण
१०३.	कंकणिका	-	पायल
१०४.	कृष्णा	-	यमुना
	अर्कजा	-	यमुना
१०५.	किरमिर	-	कमरख
	करीर	-	करील वृक्ष जिसमें कांटे होते हैं।
	प्रणव	-	ओंकार
१०६.	प्लवंग	-	वानर
	करबुरी	-	चितकबरी
	पिंजल	-	कीचड़
१०७.	चोर-जार शिखामणि	-	चोर ब्रह्मा जिन्होंने गाय बछड़े चुराये, जार इन्द्र जिसने अहिल्या का सतीत्व हरण किया उनके मुकुट की मणि
१०८.	कल्हारी	-	कमलिनी
१०९.	अनमानि	-	नास्तिक
	मानि	-	आस्तिक

छंद	शब्दार्थ		
११०.	अर्भक	-	शिशु
११३.	शिल्पीस	-	विंश्वकर्मा
११४.	अहियनहिं	-	हृदयहीनों के लिये
१३३.	ऊर्मि	-	लहर
१३४.	लंबकर्ण	-	गदहा
	नखी	-	सिंह
	सुरभि	-	गाय
१३६.	रेणुका-मेरु	-	रेत की ढेरी
१३६.	जाति-गती	-	सिद्ध संयासी
१४१.	कामुक	-	लाल सरैया
	मुचुकुंद	-	लाल पंखुड़ी वाला एक फूल
	भृंगवल्लभ	-	कदंब
	मंजुला	-	गुलाब
१४२.	बकुल	-	मौलसरी
	सोन-सतपतक	-	पीला सहस्त्र दल कमल
	पारिजातक	-	हारसिंगार
	प्रवल्ही	-	पहेली
१५४.	नियामक	-	नियंता
	रल्लक	-	ऊनी कंबल
	तोपक	-	गद्दा
	पिष्टक	-	तकिया
१५५.	तौ	-	तव, तुम्हारा
	पिपीलिका	-	चींटी
१५६.	बैसारिणी	-	नौका
	मनाक	-	छोटी
१६२.	कृषीवल	-	किसान
	कोलाकार	-	सूकर की

छंद	शब्दार्थ		
			आकृति
१६५.	अमि	-	अमृत
	लंक	-	कटि, कमर
	नेति	-	मथानी को घुमाने वाली रस्सी
१६६.	नैकषेय	-	राक्षस
१७१.	कंदुक	-	गेंद
	श्रम-सीकर	-	स्वेद-कण पसीना
१७२.	लंपट	-	दुष्ट, लुच्चा
	निचोलि	-	काया, देह
१७३.	यखिनी	-	यक्षिणी
	धूरजटी	-	शंकर, महादेव
१७५.	कलवारि	-	मद्य बेचने या पिलाने वाली
	प्रलुब्ध	-	बुद्धिमान
१७८.	बसन्यौ	-	बासन, पात्र
१८०.	साटिका	-	साड़ी
	छगुनी	-	कनिष्ठिका अँगुली
१८१.	लोकालय	-	संसार
१८३.	सटा	-	सिंह की गर्दन के बाल
	बलाहक	-	बादल
	पौरेस	-	प्रमुख द्वारपाल
१८८.	पंचतत्त्विनी	-	पंचतत्त्व निर्मित देह
१८४.	अजिर	-	आंगन
१८७.	जीवितेश	-	यमराज

छंद	शब्दार्थ		
	मलिनी	-	रजस्वला
	गुर्वणी	-	गर्भिणी
१८६.	बगर	-	आंगन का अगला-पिछला भाग, बराण्डा
१९४.	भिनुसारे	-	प्रातःकाल
१९५.	अँजोरनि	-	चांदिनियां
१९६.	विहान	-	प्रभात
	दार्यौ	-	तोड़ना
१९७.	शाकल	-	शाकल्य
	प्रस्थ	-	पर्वत के ऊपर की समतल भूमि
	कुहेती	-	नष्ट करने वाले
२००.	कपर्दक	-	कौड़ी
२०१.	कवि	-	शुक्राचार्य दैत्यगुरु
	ऋजु-बाउर	-	वास्तव में मूर्ख
२०४.	भृगुकच्छ	-	आधुनिक गुजरात का भड़ौंच क्षेत्र जहां बलि ने यज्ञ किया था

छंद	शब्दार्थ		
२०८.	बाहुजन	-	युद्ध
२०९.	पल्वल	-	सरोवर
२१०.	धाताराम	-	विधाता का बगीचा (संसार)
२११.	याग	-	यज्ञ
	मूरी	-	जड़ी-बूटी
२१३.	गर्भ-धारिनी	-	माता
२१४.	नक्र	-	मगरमच्छ, ग्राह
	मतंग	-	गज, हाथी
२१५.	सृत	-	प्रवाहित
	हयशीर्ष	-	हयग्रीव (घोड़े के सिर वाले)
२१६.	हस्तीस	-	गजराज
२१६.	बिरानन	-	परायों को
	संसृति	-	सृष्टि, संसार
२२१.	जन्य	-	पिता
२२२.	साला	-	शाला विद्यालय
	भारवाही	-	भार ढोने वाला मजदूर
२२७.	ताकरी	-	तराजू
२३०.	बापर्यौ	-	बिचारा, दीन
२३५.	झांप	-	द्वार-खिड़कियों के आगे लगा हुआ वह तख्तादि जो धूप वर्षा आदि से बचाव के लिये लगाया जाता है।
२५६.	उल्लोल	-	ऊँची लहर
२५९.	नियामक	-	नियंता
	महदादिक तत्त्व	-	सांख्य के अनुसार प्रकृति का प्रथम कार्य

छंद		शब्दार्थ
		या विकार जिससे अहंकार उत्पन्न होता है।
२५९. शतक्रतु	-	सौ यज्ञ करने वाला इंद्र
ऊन	-	न्यून, कम थोड़ा
२६१. जीव	-	देवगुरु बृहस्पति
२६४. शिखी-शिखी	-	पर्वत शिखर सी अचल मोर की कलगी
२६५. त्रिदिव	-	स्वर्ग
संपदा-सहोदरा	-	लक्ष्मी जी की बहन
गीतमोदी	-	किन्नर
२६६. हेरंब	-	गणेश जी
२६७. प्राणायामारोहिणी	-	प्राणायाम में स्वांस चढ़ाने की क्रिया (सीढ़ी)
२७२. प्रसौ-पीर	-	प्रसव-पीड़ा
२७३. प्रकरती	-	प्रकृति
२७४. कुंतल-कदंब	-	घुँघराले बालों के गुच्छे
२७७. पटु-शिल्पकी	-	चतुर कारीगर
कृशा	-	पतली
२७९. वृतिका	-	वृत्ति, प्रवृत्ति
हृतिका	-	हृदयस्थली
सृतिका	-	पुलिया
धृतिका	-	धारण करने वाली

छंद		शब्दार्थ
२८०. कुबानि	-	खोटी आदत
२९६. मदी	-	नशे में धुत
३००. संक-अंक	-	भाग्य लिपि
संसृति-औतंस	-	सृष्टि के मुकुट
३०४. कल्पनि-गाजु	-	महाप्रलय का विनाश
३१५. अलका द्वार		कुबेर की राजधानी अलकापुरी का द्वार (कैलास पर्वत की तलहटी)
३१६. खग्रास	-	पूर्णग्रहण
३१७. परकाय-प्रवेश	-	योग की साधना द्वारा प्राणों को अन्य शरीर में प्रविष्ट करना
३१८. प्रभूत	-	असंख्य
३२०. चैत्ररथ-पौध	-	कुबेर के दिव्य उपवन का नाम चैत्ररथ है, उनके छोटे बिरवे जो संसार में दुर्लभ हैं।
गुह्यक	-	यक्ष

३२९. ज्येष्ठ कृ. १२, २०५२ वि. सं.
शुक्रवार - प्रदोष व्रत

कृतिकार परिचय

आचार्य रामरंग

जन्म तिथि - आषाढ़ कृष्णा ६, १९६६ वि.सं.

एक ओजस्वी वक्ता, प्रवचनकार, रससिद्ध कवि
जिनकी लेखनी ने अर्वाचीन–प्राचीन साहित्य की प्रायः प्रत्येक विधा – यथा संस्कृत छंद, भक्तिकालीन पद, रीतिकालीन कवित्त सवैये, लोकगीत, विभिन्न भारतीय भाषाओं के छंद, नाटक, उपन्यास, कहानी, जीवनी, रेखाचित्र, व्यंग इत्यादि का भावमय सुस्पर्श कर हिन्दी साहित्य को गौरवान्वित किया है।
उनके यशस्वी दीर्घायुष्य के लिये हम शुभाकांक्षी एवं प्रभु से प्रार्थी है।

प्रकाशक

महाकवि की अन्य रचनायें

प्रकाशित-

'उत्तरसाकेत' महाकाव्य (२ खंड)

मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु श्री रामचन्द्र के राज्याभिषेक के पश्चात् से उनके गोलोकधाम–गमन तक के चरित्र पर आधारित अनेकानेक अज्ञात–अल्पज्ञात विषयों का वर्णन

नवरंग मान मर्दन

औरंगजेब के ज्वालामुखी पर आक्रमण एवं उसका पराभव

प्रकाशनाधीन

इंद्रप्रस्थ का इतिहास (गद्य, संवाद शैली में)
भरत भूमि का भाट (वीर रस प्रधान गीतिकाव्य)
रावण वध (खंड काव्य, अमित्राक्षर छंद में)
उत्तर विनय पत्रिका
उत्तर कवितावली
श्री कल्कि प्रदीप्ति
राष्ट्रकवि भूषण (नाटक)
राजर्षि अजमीढ़ (जीवनी)
विविध कहानी संग्रह आदि